अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–4 दिसम्बर–2022 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● रबी फसल उत्पादन तकनीक ● रबी फसलों में समन्वीत कीट व रोग प्रबन्धन ● समन्वित कृषि प्रणाली ● कृषि पर्यटन

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)–324001

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–4 दिसम्बर–2022 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, प्राथमिकता, निगरानी एवं मूल्यांकन

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक : DEE, Agriculture University, Kota
बैंक : ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या : 687801700345
IFSC : ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

अभिनव कृषि

वर्ष–4 अंक–4 दिसम्बर–2022

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	चना उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी अश्विनी मेहता, प्रीति वर्मा, चमन जादौन एवं सुमन यादव	1-3
2.	रबी फसलों में पाले का प्रबन्धन नरेश कुमार शर्मा एवं धर्म सिंह मीणा	4-5
3.	ऐसे करे धनिया के घातक लौंगिया रोग का प्रबंधन डी.एल. यादव, प्रीति वर्मा, प्रताप सिंह एवं प्रतिक जैसानी	6
4.	रबी प्याज उत्पादन की उन्नत तकनीकी एवं पोषक तत्व प्रबंधन सुश्री मनोज, हरफूल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव	7-9
5.	उत्तरी भारत में जौ की उन्नत खेती देवी लाल किकरालियाँ , अनुज कुमार एवं माया चौधरी	10-12
6.	सब्जियों के अधिक उत्पादन की नई प्रौधोगिकी : प्लास्टिक लो टनल सुनिल कुमार मीणा, भरतलाल मीणा एवं अशोक कुमार मीणा	13
7.	कैसे करें फसलों में रोग व्याधियों की पहचान एवं प्रभावी प्रबंधन डी.एल. यादव एवं सी.बी. मीणा	14-15
8.	कृषि क्षेत्र में सूचना प्रौधोगिकी का अनुप्रयोग सुरेंद्र कुमार, प्रियंका एवं सरिता	16
9.	कृषि पर्यटन : युवाओं हेतु अनोखा उद्यम अनिल कुल्हैरी एवं प्रमोद	17-18
10.	वर्तमान समय में छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली की उपयोगिता गिरधारी लाल मीना एवं के. सी. मीना	19-21
11.	फसलों में बोरॉन की आवश्यकता एवं महत्व विनोद कुमार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव एवं राकेश कुमार यादव	22-23
12.	शून्य जुताई–संसाधन संरक्षण की एक नई तकनीक पिंकी यादव, एस. के. शर्मा एवं सुरेश कुमार जाट	24-25
13.	फायदेमंद है ग्वारपाठा (एलोवेरा) कमल महला, मुकेश चंद भठेश्वर एवं पूजा शर्मा	26
14.	उर्वरकों में मिलावट की पहचान किसानों के लिए आसान मनोज कुमार शर्मा, बी. एस. मीणा एवं राजेन्द्र कुमार यादव	27-29
15.	सरसों की आनुवंशिक संवर्धित संकर किस्म 'डी एम् एच 11' –जोखिम एवं संभावनाएं खजान सिंह, पी के पी मीना, वर्षा गुप्ता एवं मंजू मीना	30
16.	कृषि में समुद्री शैवाल उर्वरक का महत्व संतोष यादव, ममता एवं राजेन्द्र कुमार यादव	31
17.	कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन कृषको के लिए एक लाभकारी नवाचार हरफूल मीणा, सुश्री मनोज ,राजेन्द्र कुमार यादव एवं उदिति धाकड	32-33
18.	सोयाबीन बीज का भण्डारण–समस्या एवं समाघान आर. के. महावर, के.सी. मीना एवं राकेश कुमार बैरवा	34-35
19.	ड्रैगन फ्रूट की खेती की उन्नत तकनिकी अनुज कुमार, देवी लाल किकरालियाँ एवं नरेन्द्र पादड़ा	36-37

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की आर्थिक सम्पन्नता एवं स्वरोजगार कृषि पर निर्भर है। देश में सुविकसित अनुसंधान, प्रसार व्यवस्था तथा कृषकों की ग्राह्यता से बना त्रिवेणी संगम ऐसा सुन्दर उद्गम है जो किसी भी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति के समाधान में सक्षम है। हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति व पीली क्रान्ति के माध्यम से देश के कृषकों ने न केवल अनाज, दुग्ध उत्पादन व तिलहन में आत्म निर्भरता प्राप्त की अपितु देश को निर्यातक देशों की श्रेणी में स्थापित किया है। परन्तु वर्तमान में बहुत सारी घातक व लाईलाज बीमारियां जैसे कैंसर, हृदयघात, बी.पी., थाईराइड, अन्य तनावग्रस्त बीमारियां मानव स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम डाल रही हैं। इन सबके पिछे देश में खेती किसानी में काम ली जा रही अंधाधुंध दवाईयों, रसायनों, उर्वरकों आदि का योगदान है जिनके असंतुलित अनुप्रयोग से मृदा स्वास्थ्य दिन–प्रतिदिन खराब होता जा रहा है एवं इन आदानों का अवशेष प्रभाव हमारे कृषि उत्पादों से होते हुए मानव शरीर में पहुँच रहा है।

इन परिस्थितियों में यह अतिआवश्यक है कि हम हमारी मृदा के स्वास्थ्य का ध्यान रखें जिसके लिए मृदा की जांच उपरान्त मृदा स्वास्थ्य कार्ड अनुरूप ही सिफारिश किये गये खाद–उर्वरक एवं अन्य रसायनों का प्रयोग करें ताकि हम इन घातक लाईलाज बीमारियां से बच सकें। मृदा स्वास्थ्य को निरन्तर लम्बे समय तक सुचारू बनाये रखने के लिए जैविक खादों की अहम भूमिका रहती है जिन्हें समय–समय पर जीवांश पदार्थों के माध्यम से आपूर्ति कराना अतिआवश्यक है। साथ ही फसल अवशेषों को जलाने के बजाय सही विधियों व तरीके से सड़ा–गलाकर खेत में डालना चाहिए। ताकि मृदा पर्यावरण एवं वातावरण पर पड़ने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सके।

पत्रिका के इस अंक में लेखकगणों से प्राप्त कृषि सम सामयिकी जैसे चना उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी, रबी फसलों में पाले का प्रबंधन, धनियां के घातक लोंगिया रोग का प्रबंधन, रबी प्याज उत्पादन, सब्जियों के लिए प्लास्टिक लो टनल, फसलों में रोग व्याधि की पहचान एवं प्रबंधन, कृषि पर्यटन, एकीकृत कृषि प्रणाली, उर्वरकों में मिलावट की पहचान, कृषि मौसम परामर्श एवं ड्रेगन फल की खेती इत्यादि को सम्मिलित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि अभिनव कृषि का यह अंक कृषि से जुड़े कृषकों तथा प्रसार कार्यकर्ता के लिए अत्यन्त लाभकारी होगी। अंत में पत्रिका के सभी पाठकगणों, लेखकों, पत्रिका के प्रकाशन हेतु संपादक एवं सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं लेखकों को हार्दिक शुभकामनायें देता हूं।

(एस.के. जैन)

चना उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी

अश्विनी मेहता, प्रीति वर्मा, चमन जादौन एवं सुमन यादव
कृषि महाविद्यालय, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

चना एक महत्वपूर्ण रबी दलहन फसल हैं। यह मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं देसी और काबुली। दलहनी फसले एक तरफ जहाँ मानव स्वास्थ्य के लिए प्रोटीन का स्त्रोत होती है, वही उनकी जड़ो में बनी राइजोबियम गाँठ में नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है जिस कारण भूमि की उर्वरकता बढ़ती हैं व खाद की आवश्यकता कम होती हैं और इस प्रकार खेती की लागत भी कम हो जाती हैं।

चने का उपयोग दाल, बेसन, सब्जी व अन्य रुप में किया जाता हैं। भारत में चने की खेती 9.99 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है जिससे 11.91 मिलियन टन उत्पादन और 11.92 क्विटल प्रति हेक्टेयर की उत्पादकता प्राप्त होती है (वर्ष 2020–21)। भारत में चने की खेती मुख्य रुप में मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा बिहार में की जाती हैं। राजस्थान में चने की खेती 2.11 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है जिससे 2.26 मिलियन टन उत्पादन और 10.72 क्विटल प्रति हेक्टेयर की उत्पादकता प्राप्त होती है तथा राजस्थान के जलवायु खंड V में चने की खेती 0.212 मिलियन हेक्टेयर मे की जाती है जिससे 0.394 मिलियन टन उत्पादन व 18.57 क्विटल किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की उत्पादकता (वर्ष 2020–21) प्राप्त होती है ।चने की उन्नत किस्में निम्नानुसार है।

1. **कोटा देसी चना–1 (आर के जी 13–515) :** यह किस्म कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गई हैं तथा यह राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। देरी से बुवाई हेतु अनुकूल इस किस्म के दाने मध्यम आकार व भूरे रंग के होते है तथा इसके 100 दानों का भार 21–23 ग्राम होता है। देसी चने की यह किस्म 105–115 दिनों में पककर 23–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज देती है। गुलाबी रंग के फुलो वाली यह किस्म उखटा व जड़गलन रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी हैं।

2. **कोटा काबुली चना–1 (आर के जी 13–271) :** यह किस्म कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गई हैं तथा यह राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। काबुली चने की इस किस्म के दाने मध्यम आकार के होते है तथा इसके फूल सफेद रंग के होते है। इसके 100 दानों का भार 31.2 ग्राम होता है। यह किस्म 110–120 दिनों में पककर 24–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज देती है। यह किस्म उखटा व जड़गलन रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी हैं।

3. **कोटा काबुली चना–2 (आर के जी के 13–499):** यह किस्म कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गई हैं तथा यह भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र व राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। यह अति मोटे काबुली चने की किस्म है जिसके 100 दानों का भार 40.7 ग्राम से अधिक होता है। यह किस्म 135–149 दिनों में पककर 16–18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज देती है। इस किस्म के फूल सफेद रंग के होते तथा यह उखटा, शुष्क जड़ गलन व तना गलन रोग के प्रति प्रतिरोधी हैं।

4. **कोटा काबुली चना–3 (आर के जी के 13–414):** यह किस्म कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गई हैं तथा यह भारत के पश्चिमी मध्य क्षेत्र व राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। काबुली चने की यह किस्म समय से बुवाई के लिए अनुकुल है तथा इसके दाने मोटे एवं झुर्रीदार होते हैं। इसके 100 दानों का भार 27 ग्राम से अधिक होता है। इस किस्म में एकल सफेद फूल आते हैं। यह किस्म 110–115 दिनों में पककर 17.80 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है। यह किस्म चने के मुख्य रोग शुष्क जड़ गलन, उखटा व तना गलन रोग के प्रति प्रतिरोधी हैं।

5. **प्रताप चना–1 (2005) :** देसी चने की यह किस्म महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2005 में विकसित की गई हैं तथा यह राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। पीले दानों वाली यह किस्म वर्षा–पोषित क्षेत्रों में बुवाई हेतु अनुकुल हैं। यह जल्दी पकने वाली किस्म है जो कि 95–100 दिन में पककर 18–20 क्वि. प्रति हैक्टेयर उपज देती है तथा इसके 100 दानों का वजन 19–20 ग्राम है।

6. **जी एन जी 1958 :** यह किस्म स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2013 में विकसित की गई हैं तथा यह भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। सिंचित क्षेत्र मे बुवाई के लिए अनुकूल इस किस्म के दाने आकार में मोटे व भूरे रंग के होते है। गुलाबी रंग के फूलो वाली इस किस्म के 100 दानों का वजन 25–27 ग्राम होता है। यह 120–125 दिनों में पककर 18–24 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है।

7. **जी एन जी 2144 (तीज) :** देसी चने की यह किस्म स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2016 में विकसित की गई हैं तथा यह भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र व राजस्थान के आर्द्र दक्षिण पूर्वी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। देरी से बुवाई के लिए अनुकूल इस किस्मे में दोहरे फूल व फलियाँ आती है। इसके 100 दानों का वजन 16–17 ग्राम होता है। यह किस्म 125–130 दिनों में पककर

22–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है तथा यह उखटा, जड़ गलन एवं झुलसा रोग के प्रति सहनशील हैं।

8. **जी एन जी 2171 :** यह किस्म स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) द्वारा वर्ष 2017 में विकसित की गई हैं तथा यह भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। सिंचित क्षेत्र मे बुवाई के लिए अनुकूल इस किस्म के दाने पीले रंग के होते है तथा इसके 100 दानों का भार 16 ग्राम से अधिक होता है। यह किस्म 125–130 दिनों में पककर 20–22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है। तथा यह उखटा रोग के प्रति सहनशील हैं।

9. **राज विजय ग्राम–201 (आर वी जी–201):** यह किस्म आर.वी. एस.के.वी.वी ग्वालियर (मध्यप्रदेश) द्वारा वर्ष 2011 में विकसित की गई हैं। यह जल्दी पकने वाली देसी चने की किस्म हैं जोकि सिंचित क्षेत्र मे बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। यह किस्म 100–110 दिनों में पककर 24–26 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है। यह उखटा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी हैं।

10. **राज विजय ग्राम–202 (आर वी जी–202):** यह किस्म आर.वी. एस.के.वी.वी ग्वालियर (मध्यप्रदेश) द्वारा वर्ष 2012 में विकसित की गई हैं। यह किस्म देरी से बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। यह किस्म 100–110 दिनों में पककर 19–21 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है। ये उखटा, शुष्क जड़ गलन व कोलर रोट रोग के प्रति प्रतिरोधी हैं।

11. **राज विजय ग्राम–203 (आर वी जी–203) :** यह किस्म आर. वी.एस.के.वी.वी ग्वालियर (मध्यप्रदेश) द्वारा वर्ष 2012 में विकसित की गई हैं। यह किस्म सिंचित क्षेत्र में देरी से बुवाई हेतु उपयुक्त हैं। यह किस्म 95–105 दिनों में पककर 18–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर कि उपज देती है। ये किस्म उखटा व शुष्क जड़ गलन रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी हैं।

जलवायु : चने की खेती रबी मौसम में बारानी फसल के रुप में की जाती है। देश में शुष्क व शीत क्षेत्रों में चने की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती हैं। चने की खेती के लिए मध्यम वर्षा (60–90 सेमी वार्षिक वर्षा) अनुकूल रहती हैं। फसल में फूल आने के बाद वर्षा होना हानिकारक हैं क्योकि वर्षा के कारण परागकण एक–दूसरे से चिपक जाते हैं तथा फूल झड़ जाते हैं जिससे बीज नही बनते हैं। इसकी खेती के लिए 20–30° सेल्सियस तापमान उपयुक्त हैं।

भूमि का चुनाव : बलुई, दोमट से गहरी दोमट मिट्टी में चने की खेती सफलता पूर्वक की जाती हैं किन्तु अधिक जलधारण व उचित जल निकास वाली भूमियाँ सर्वोत्तम रहती हैं। मृदा का पी.एच. मान 6–7.5 उपयुक्त रहता है। हल्के ढलान वाले खेतो में चने की फसल अच्छी होती है। ढेलेदार मिट्टी में देसी चने की भरपूर फसल ली जा सकती है।

भूमि की तैयारी : भूमि या खेत की सतह सख्त या कठोर होने पर अंकुरण प्रभावित होता हैं एवं पौधो की वृद्धि कम होती हैं इसलिए मृदा वायु संचरण को बनाए रखने के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा 2 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करें। फिर पाटा चलाकर खेत को समतल करें दीमक प्रभावित खेतो में क्लोरपाइरीफॉस मिलाएँ इससे कटुआ लट पर भी नियंत्रण होता हैं।

बुवाई का समय : असिंचित क्षेत्रो में चने की बुवाई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक कर देवे, सिंचित क्षेत्रो में बुवाई अक्टूबर तक करें। बुवाई का उचित समय अक्टूबर का द्वितीय पखवाड़ा हैं।

बीजदर व बीजोपचार : अच्छे उत्पादन हेतु देशी चने की बीजदर 75–80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तथा 100–120 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर काबुली चने के लिए उपयुक्त रहती हैं उखटा व जड़ सड़न रोग में फसल के बचाव हेतु बीज को 2 ग्राम थायरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलो या वीटावेक्स (कार्बोक्सिन) 2 ग्राम प्रति किलो से उपचारित करे।

- चने के बीज को 1.0 ग्राम अमोनियम मोलीबडेट प्रतिकिलो बीज एवं राइजोबियम कल्चर एवं पी.एस.बी. कल्चर से उपचारित करने के बाद ही बोये। एक हेक्टेयर क्षेत्र के बीजो को उपचारित करने हेतु तीन पैकेट कल्चर पर्याप्त हैं। बीज उपचार करने हेतु आवश्यकतानुसार पानी गर्म करके गुड़ घोले। इस गुड़ मिले पानी को ठंडा करने के बाद कल्चर को इसमें भली प्रकार मिलाये तत्पश्चात इस कल्चर मिले घोल से बीजो को उपचारित करे एवं छाया में सुखाने के बाद ीघ्र बुवाई करें।

- मृदा परीक्षण के आधार पर समस्त उर्वरक अन्तिम जुताई के समय हल्के पीछे चोंगा बाँधकर या फर्टीसीड़ ड्रिल द्वारा कूंड में बीज की सतह से 2 सेन्टीमीटर गहराई व 5 से.मी. साइड़ में देना सर्वोत्तम रहता हैं।

- गोबर की खाद या कम्पोस्ट 5 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देने पर उपज मे वृद्धि होती हैं। औसतन असिंचित क्षेत्रों में 10 किलो नत्रजन 25 किलो फॉस्फेट तथा सिंचित क्षेत्रों में 20 किलो नत्रजन 40 किलो फॉस्फेट प्रति हेक्टेयर देना उपयुक्त रहता हैं। जिन क्षेत्रों में जस्ता की कमी हो वहा 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिंक सल्फेट बुवाई के समय देने पर अधिक उपज प्राप्त होती हैं।

सिंचाई : चने की खेती बारानी प्रकार से की जाती है परन्तु जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहाँ भारी व चिकनी भूमि को छोड़कर अन्य भूमियों में 2 सिंचाई आवश्यक होती हैं। पहली सिंचाई शाखाएँ बनते समय व द्वितीय फलियों में दाना बनते समय करें। चनें में फूल बनने की सक्रिय अवस्था में सिंचाई ना करें।

निराई–गुडाई : बुवाई के 25–30 दिन बाद एक निराई–गुडाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ मृदा में वायु संचार भी बनता हैं। आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निराई–गुडाई इसके 20 दिन बाद करें।

खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण हेतु अंकुरण से पूर्व पेन्डिमिथालिन 1.0 किलो सक्रिय तत्व का प्रति हेक्टेयर प्रयोग करे।

शीर्ष कलिका तोड़ना : जब पौधा 15–20 से.मी. की ऊचाई के हो जाए तब पौधे की शीर्ष शाखाएँ तोड़ देने से पौधे की शाखाएँ अधिक फुटती हैं, अत: फूल व फलियों की संख्या प्रति पौधा बढ़ जाती हैं।

पाले से बचाव : दिसम्बर से फरवरी तक पाला पड़ने की संभावना रहती हैं। पाला पड़ने की संभावना हो तब एक हल्की सिंचाई कर दें। सिंचाई की सुविधा न होने की स्थिति में पाला पड़ने की आशंका वाली रात्रि को खेत में धुआँ करें। बचाव हेतु 1000 लीटर पानी में 1 लीटर गंधक का तेजाब मिलाकर 1 हेक्टेयर में छिड़काव करें।

पौध संरक्षण

फली छेदक : इस कीट की लटे हरे रंग की होती हैं जो बाद में गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं। ये आरम्भ में चने की पत्तियों को खाती हैं। दाना बनते समय फली में छेद कर विकसित दाने को पूरी तरह खा जाती हैं। पौधे के फूलों, पत्तियों व शाखाओं पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। नियंत्रण के लिए फूल आने से पहले तथा फली लगने के बाद मेलाथियॉन 5% का 20–25 किलो प्रति हेक्टेयर भुरकाव करें।

कटवर्म : कटवर्म की लटे गहरे भूरे रंग की होती हैं जो ढ़ेलो के नीचे छुपी रहती हैं और रात को पौधे को जमीन के स्तर से काटकर नुकसान पहुँचाती हैं। इनकी रोकथाम हेतु भूमि उपचार करवाना आवश्यक हैं। इनके नियंत्रण हेतु फोरेट टेन जी 10 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व मिट्टी में मिलाएँ। कटवर्म का प्रभाव दिखाई देते ही क्युनालफॉस 1.5 चूर्ण का 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

उखटा रोग : इस रोग की अवस्था में पौधो कि बढ़वार रुक जाती हैं। जड़े काली पड़ जाती हैं व बाद में पौधे सुख जाते हैं। इसके नियन्त्रण हेतु फफूंदनाशी दवा थायरम 2 ग्राम व कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम से प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचार करके बोना चाहिए। इस रोग की रोकथाम के लिए देर से व गहरी बुवाई (8–10 सेमी) करना उपयुक्त रहती हैं।

झुलसा रोग : इस रोग में जड़ को छोड़कर सम्पूर्ण पौधा प्रभावित होता है। प्रारम्भिक अवस्था में पौधे के तने, पत्तियों व फली पर गोल भूरे रंग के धब्बे उभर आते हैं, जो बाद में पीले रंग के हो जाते हैं। इनके कारण पौधा धीरे–धीरे सुख जाता हैं तथा तना व डंठल टूट जाता हैं। लक्षण दिखाई देते ही मेन्कोजेब 0-2% या कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.3: घोल का छिड़काव करे।

श्वेत तना गलन : इस रोग में भूमि के समीप वाले तने का भाग व ऊपरी शाखाएँ प्रभावित होती हैं। तना सड़ जाता हैं व सफेद फफूंद दिखाई देती हैं। आरम्भ में पौधा पीला पड़ जाता हैं फिर भूरा होकर मर जाता हैं। लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 0.5% या बेनोमिल 0.5% घोल का छिड़काव करे।

कटाई व मड़ाई : जब पत्तियाँ पीली व हल्की भूरी हो जाती हैं या झड़ जाती हैं तब कटाई करना चाहिए। फली से दाना निकालकर दांत से काटा जाए और कट की आवाज आए तब फसल कटाई के लिए तैयार हैं। काटने के बाद फसल के एक स्थान से दूसरे स्थान पर इकठ्ठा करके 4–5 दिन तक सुखाकर मड़ाई की जाती है। सुखने के बाद मड़ाई बैलो से या फिर थ्रेसर द्वारा की जाती हैं।

भण्डारण : दानों को सुखाने के पश्चात बोरियों में भरे तथा नमी रहित स्थान में भण्डारित करे। भण्डारण के समय दानों में नमी का प्रतिशत 10 से अधिक नही होनी चाहिए इससे अधिक नमी होने पर घुन पैदा होने की आशंका रहती है जिससे चने को काफी क्षति पहुँचती हैं। साबूतदानों की अपेक्षा दाल बनाकर भण्डारण करने पर घुन में क्षति कम होती हैं।

चने में मित्र पक्षीयों द्वारा कीट नियंत्रण : चनें में फली बनते समय मित्र पक्षियों की प्रजातियाँ जैसे– बगुले, घरेलु चिड़िया, काली चिड़िया, मैना आदि की संख्या सामान्य पाये जाने पर कीटनाशियों का प्रयोग नही करे क्योकि मित्र पक्षी, फली छेदक कीट की लट संख्या को आर्थिक दृष्टि से नीचे रखने में सक्षम होते हैं। चने में मित्र पक्षियों के बैठने हेतु लगभग 40–50 खप्पचियाँ प्रति हेक्टेयर की दर से चने के पौधे की ऊँचाई से 10–20 सेमी अधिक ऊँची लगाना चाहिए।

चने का आई पी एम मोड्यूल

1. बीज की मात्रा 80 किलो प्रति हेक्टेयर व लाइन की दूरी 30 सेमी रखे।
2. बीजोपचार के लिए कार्बोक्सीन 2 ग्राम प्रति किलो बीज +ट्राइकोड्रर्मा विरिडी 4 ग्राम प्रति किलों बीज+ राइजोबियम कल्चर 600 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर का प्रयोग करें।
3. 5–7 फिरोमोन ट्रेप प्रति हेक्टेयर फली छेदक कीट की निगरानी हेतु लगाएँ।
4. पक्षी आश्रय के लिए T आकार की 40–50 खप्पचियाँ प्रति हेक्टेयर की दर से लगाएँ।

छिड़काव

- नीम की निम्बोली का 0.5% अर्क (5 मिलीलीटर प्रति लीटर) तथा 1500 पी पी एम एजेडारेक्टिन का प्रयोग करें। (5 मिलीलीटर प्रति लीटर)।
- फूल आने से पहले एन पी वी 250 एल ई (लार्वी इक्वलन्ट) का प्रयोग करें।

कीट की संख्या आर्थिक हानि स्तर से अधिक होने पर फूल आने से पहले या फली बनने के बाद मेलाथियॉन 5% चूर्ण का 20–25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

रबी फसलों में पाले का प्रबन्धन

नरेश कुमार शर्मा एवं धर्म सिंह मीणा
अतिरिक्त निदेशक कृषि (वि0) कोटा खण्ड, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

कृषि में भारत की वार्षिक विकास दर को बढाने के लिये फसल उत्पादन में वृद्धि, जल संसाधनों का विस्तार, बेहतर पोषक तत्व एवं पौध संरक्षण, पाला, गर्म हवाऐं आदि पर ध्यान देना अत्यधिक आवश्यक है। सर्दियों में तापमान 0 डिग्री सेल्सियस या इससे कम होने पर ओस की बूंदें या वायु में निहित वाष्प जल कणों में बदलकर सीधे हिम कणों में परिवर्तित हो जाती है तथा यह कण पौधो पर जम जाते है। इस प्रकार हिम के रूप में बनी ओस को पाला कहते है। पाला कोई रोग, दैहिक विकार या कीट नहीं होने के उपरान्त भी फसलों, सब्जियों, फूलो एवं फलो के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पाले से टमाटर, मटर, मिर्च जैसी सब्जी फसलों में 80 से 90 प्रतिशत हानि, दलहनी फसलों में 50 से 75 प्रतिशत, पपीता एवं केले जैसे फलो में 80 से 90 प्रतिशत तथा अनाज वाली फसले जैसे जौ, गेहूं, जई में 15 से 20 प्रतिशत हानि हो जाती है एवं साथ ही इसका प्रकोप इतना गंभीर एवं तेज होता है कि कृषक को इसके बचाव हेतु किये जाने वाले उपायो का समय भी नही मिल पाता हैं।

पाला पड़ने के लक्षण

सामान्यतया पाला पड़ने की सर्वाधिक आशंका 1 जनवरी से 10 जनवरी तक अत्यधिक रहती है। सर्दी के मौसम में जिस दिन दोपहर से पूर्व तापमान जमाव बिन्दु से नीचे गिर जाये एवं ठण्डी हवा चलती रहे तथा आसमान साफ रहे व दोपहर बाद अचानक हवा चलना बन्द हो जाये तो उस दिन पाला पड़ने की अत्यधिक संभावना होती है। विशेषकर रात को तीसरे एवं चौथे पहर में पाला पड़ने की सर्वाधिक संभावनाऐं होती है।

पाले का फसलों पर प्रभाव

- वायुमण्डल तापमान का जमाव बिन्दु के आसपास पंहूच जाने पर पौधे की कोशिकाओं के अन्दर एवं बाहर का पानी जमना प्रारंभ हो जाता है जिसके कारण पौधो की कोशिका भित्ती फट जाती है।
- पाला पड़ने एवं तनाव की स्थिति में पौधो में प्रोलीन नामक अमीनो अम्ल का निर्माण बढ जाता है जो पौधे की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव छोडता है।
- वायुमण्डलीय तापमान अत्यन्त कम हो जाने पर पौधे की विभिन्न उपापचयी क्रियाओं में आवश्यक एन्जाइमों की सक्रियता कम हो जाती है।
- वायुमण्डलीय तापमान कम होने पर पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया अत्यन्त धीमी हो जाती है जिससे पौधे में भोजन का निर्माण भी अत्यन्त कम होता है। साथ ही श्वसन क्रिया भी धीमी होने से पौधे में ऊर्जा का निर्माण नहीं होता है।
- कम तापमान के कारण पौधे की कोशिकाओं की झिल्लियों में पाये जाने वाले फॉस्फोलिपिड ठोस रूप में परिवर्तित हो जाते है। जिसके कारण झिल्लियों में बहाव रूक जाता है।
- पौधे की कोशिकाऐं नष्ट होने की स्थिति में कीट और रोगो का प्रकोप बढ जाता है।

पाले से पौधो को क्षति

पाले से प्रभावित पौधो की कोशिकाओं में उपस्थित पानी अन्तरकोशिकीय स्थान पर इकट्ठा हो जाता है एवं इसी दौरान अन्तरकोशिकीय स्थान में एकत्रित जल जमाव बिन्दु के आस–पास वाले तापमान पर जमकर बर्फ में परिवर्तन हो जाता हैं जिसके कारण कोशिका के आयतन में वृद्धि होती है। जिसका प्रभाव कोशिका की भित्ती पर पडता है। दबाव को सहन नही कर पाने के कारण कोशिका भित्ती फट जाती है एवं अन्त में पौधा धीरे–धीरे सुखने लगता है। पाले का सर्वाधिक दुष्प्रभाव पौधो की पत्तियों एवं फलों पर पड़ता है। फुल झड़ने लगते है, अधपके फल सिकुड जाते है, बालियों में दाने नही बनते है एवं दानो के भार में भी कमी आती है।

पाले से फसलों की सुरक्षा कैसे करें

1. **सिंचाई के द्वारा :** पाला पड़ने की अवस्था पर सिंचाई कर देने से फसलों का तापमान लगभग 0.5 से 2.0 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है जिससे पौधो पर पाले का असर नहीं होता है। इसलिए जब पाला पड़ने की आशंका हो तो सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए, परन्तु पानी इतना ही दिया जाना चाहिए ताकि मिट्टी केवल गीली रहे। कम ऊंचाई वाली फसलों में सिंचाई के लिये फंव्वारा विधि भी उपयोग में लाई जा सकती है, परन्तु फंव्वारे को प्रातः काल से सूर्योदय तक लगातार चलाया जाना चाहिए। यदि सुबह 4 बजे तक फंव्वारे चला कर बन्द कर देते है तो सूर्योदय से पहले फसल पर बून्दों के रूप में उपस्थित जल बर्फ में परिवर्तित हो जाता है, जिससे लाभ की अपेक्षा नुकसान की संभावनाऐं अधिक हो जाती है।

2. **धुआं करना :** खेत की मेढों पर फसलों के अवशेष, घरेलु कुडा–कचरा, घास–फूस जलाकर धुआं करने से वातावरण का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ जाता है। सामान्यतया धुआं रात को 12 बजे के पश्चात् किया जाना चाहिए।

3. **वायु अवरोधक वृक्ष लगाकर :** फसलों को लम्बे समय तक पाले से बचाने के लिये उत्तर–पश्चिमी मेढो पर वायु अवरोधक वृक्ष जैसे– आम, जामून, शीशम, शहतूत, बबूल, खेजड़ी आदि लगाने चाहिए। लगाई गई पेड़ो की पंक्तियां जितनी अधिक होगी शीत लहर से सुरक्षा उसी के अनुपात में बढती जाती है। सामान्यतया वह दिशा जहां से शीत लहर आ रही है तो लगाई गई वृक्ष की पट्टी पौधे की ऊंचाई की चार गुना तक पौधो की रक्षा करती है। जबकि वह दिशा जहां शीत लहर जा रही है तो उस दिशा में वृक्ष की पट्टी अपनी ऊंचाई की 25 से 30 गुना तक पौधो को शीत लहर से बचाती है।

4. **पलवार द्वारा :** नर्सरी में छोटी आयु के पौधो को पाले से बचाने के लिये पलवार एक सर्वोत्तम विकल्प है। पलवार मृदा द्वारा की गई सौर

विकिरणों से उत्पन्न उष्मा को वायुमण्डल में जाने से रोकती है। जिससे मृदा का तापमान परिवर्तन नहीं होता है। इसके साथ–साथ वायुरोधी टांटियां लगाकर भी पौधो को पाले से बचाया जा सकता है। वायुरोधी टांटियां हवा के आने वाली दिशा की तरफ यानि उत्तर–पश्चिम की तरफ बांधी जानी चाहिए।

5. रसायनो के उपयोग से

- **गंधक के तेजाब का उपयोग :** जिस दिन पाला पड़ने की संभावना हो उस दिन फसल पर 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब का छिड़काव किया जाना चाहिए। एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में छिड़काव के लिये 1 लीटर सान्द्र गंधक के तेजाब को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें, यदि इस अवधि के बाद भी शीत लहर या पाला पड़ने की संभावना हो तो 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब के छिड़काव को 15–15 दिन के अन्तराल में पुनः दौहराते रहना चाहिए।

- **डाई मिथाइल सल्फो–ऑक्साइड का छिड़काव :** डाई मिथाइल सल्फो–ऑक्साइड पौधो से पानी को बाहर निकालने की क्षमता में अत्यधिक वृद्धि करता है जिसके परिणामस्वरूप कोशिकाओं में पानी जम नहीं पाता है। पाला पड़ने की आशंका होने पर 75 से 100 ग्राम डाई मिथाइल सल्फो–ऑक्साइड को 1000 लीटर पानी में घोलकर 1 हैक्टेयर में छिड़काव करें। यदि इस अवधि के बाद भी शीत लहर या पाला पड़ने की संभावना हो तो छिड़काव को 15–15 दिन के अन्तराल में पुनः दौहराते रहना चाहिए।

- **ग्लूकोज का छिड़काव :** पौधो में ग्लूकोज के छिड़काव से इसकी कोशिकाओं में घुलनशील पदार्थ की मात्रा बढ जाती है। जिससे कम तापमान होने पर भी कोशिकाओं के कार्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। साधारणतया पुष्पन अवस्था पर 1 किलोग्राम ग्लूकोज प्रति हैक्टेयर 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है।

- **साइकोसिल का छिड़काव :** साइकोसिल एक वृद्धि अवरोधक रसायन है जिसके छिड़काव से पौधे की वृद्धि रूक जाती है। अतः फसलों एव सब्जियों में फूल आने की अवस्था पर 0.03 प्रतिशत साइकोसिल रसायन का छिड़काव करने से पौधो को पाले से बचाया जा सकता है।

6. अन्य उपाय

- **पाला अवरोधी फसले उगाना :** जिन क्षेत्रो में पाला पड़ने की संभावना अधिक हो वहां पाला प्रतिरोधी फसले जैसे – चुकन्दर, गाजर, गैहूं, जौ आदि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके साथ–साथ कुछ फसलों की पाला प्रतिरोधी किस्में जैसे – आलू की कुफरी शीतमान, कुफरी सिन्दुरी, कुफरी देवा, मटर की बी.एल.–1, बी.एल.–3 आदि की खैती की जानी चाहिए।

- **समय पर बूवाई :** पाला पौधे की पुष्पन अवस्था को सर्वाधिक प्रभावित करता है। अतः वे क्षेत्र जहां प्रतिवर्ष पाला पड़ता है तो वहां पर फसलों की बुवाई समय से पूर्व (अगेती बुवाई) की जानी चाहिए।

- फलदार वृक्षों के आस–पास तालाब, फार्मपोण्ड, जलाशय आदि का निर्माण करने से भी फल वृक्षों पर पाले का असर कम होता है, क्योंकि जल की विशिष्ट उष्मा सर्वाधिक होती है अर्थात् पानी देरी से गर्म होता है एवं देरी से ही ठण्डा होता है।

- फसलों को पाले से बचाने के लिए सूर्योदय से पूर्व एक मेढ से दुसरे मेढ की तरह रस्सी को बलपूर्वक घूमाते हुए फसलों को हिलाकर जमे हुए पानी को नीचे जमीन पर गिरा देवें, परन्तु यह क्रिया पौधे में पुष्पन अवस्था के दौरान नहीं की जावें। अन्यथा फल झड़ने की संभावना अत्यधिक होगी। इस प्रकार किसान फसलों, नर्सरी एवं फल वृक्षों को इन सभी विधियों एवं उपलब्ध साधनों का सही उपयोग कर पाले के प्रकोप से बचा सकते है।

❋❋❋

ऐसे करे धनियां के घातक लौंगिया रोग का प्रबंधन

डी.एल. यादव, प्रीति वर्मा, प्रताप सिंह एवं प्रतिक जैसानी
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, अनुसंधान निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

प्राचीन काल से ही विश्व में भारत देश को ''मसालों की भूमि'' के नाम से जाना जाता है। धनिया एक बहुमूल्य बहुउपयोगी मसाले वाली आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी फसल है। धनिया के बीज एवं पत्तियां भोजन को सुगंधित एवं स्वादिष्ट बनाने के काम आते है। धनिया बीज में बहुत अधिक औषधीय गुण पाये जातें है। भारत धनिया का प्रमुख निर्यातक देश है। धनिया का लौंगिया रोग प्रोटोमाइसीज मैक्रोस्पोरस नामक कवक द्वारा होता है। यह धनिया का बहुत ही हानिकारक रोग है। बीज का आकार लोंग की तरह तथा सामान्य से कई गुना बडा हो जाता है। इसलियें इसे लोंगिया रोग भी कहते है। इस रोग के लक्षण पौधे के सभी वायवीय भागों जैसे–पत्ती, तना, फूल तथा बीज पर पाये जातें है। संक्रमित भाग सूज कर छाले के समान हो जाता है तथा तने टेढे–मेढे हो जाते है। रोग की आक्रामक अवस्था में 15–25 प्रतिशत तक का नुकसान हो सकता है।

रोग के फैलाव की अनुकूल परिस्थति

लगातार बादल छाए रहने से एवं वातावरण मे अधिक नमी के कारण लोगिया रोग के फैलाव के लिए अनुकूल है। जब भूमि में नमी की मात्रा अधिक और रात के तापमान में कमी और सुबह की ओस सहित दिन के तापमान में वृद्धि होने लगती है तब क्लेमाइडोस्पोर जमाव शुरू करते हैं जो तने के बाहरी भाग पर गांठ जैसी वृद्धि करते हैं और धीरे–धीरे पूरे तने, पत्तियों तथा फलों पर फैल जाते हैं। यह बीमारी देरी से बोयी गई फसलों पर अधिक दिखाई देती है।

कैसे करे किसान इस रोग की पहचान

इस रोग के लक्षण पौधे के उपरी भाग पत्ती, तना, फूल तथा फल पर पाये जातें है। फूल लगने के पहले ही रोग–जनक कवक सर्वांगी हो जाता है तथा नरम एवं मुलायम शाखाओं का शीर्ष मुड़कर विरूपित हो जाता है। संक्रमित भाग सूजकर विरूपित हो जाता है तथा भूमि के निकट तने पर छोटी–छोटी पिटिकाएं दिखने लगती है। ये पिटिकाएं उभरी हुई, भूरी अर्ध–वृत्ताकार से हंसियाकार, लम्बी तथा रूक्ष हो जाती है और धीरे–धीरे बढ़कर 1 से.मी. तक की हो जाती है। अनेक पिटिकाओं के मिल जाने से एक लम्बी धारी–सी बन जाती है। बाद में ये पिटिकाएं तने के ऊपरी भाग पर भी बनती है। अधिक संक्रमित पौधों के तनों की सतह पिटिकाओं से पूर्णतः ढक जाती है। संकमित पौधों के तने पिटिकाएं बनने के कारण विशेष रूप से लम्बे हो जाते है। नीचे वाली संक्रमित पत्तियां भूमि पर गिरकर धीरे–धीरे मृदा मे मिल जाती है। सर्वांगी संक्रमण के फलस्वरूप शिराएं तथा पुष्पवृंत अधिक सूज जाते है। इस तरह के तीव्र संक्रमण के कारण बीज की वृद्वि रूक जाती है। संक्रमित फल शिथिल होकर पिटिका की तरह हो जाता है, जो सामान्य बीज से कई गुना बड़ा होता है जो बीज तथा मसाले के लिए उपयुक्त नहीं रह जाते। एक गुच्छे के सभी या केवल एक या अधिक बीज संक्रमित हो सकते है।

ऐसे करे रोग का प्रबंधन

1. रोग रहित फसल से प्राप्त बीज को ही बुवाई के काम मे लें।
2. रोग ग्रस्त फसल अवशेष को जलाकर नष्ट करें।
3. पिटिका युक्त बीज की बुवाई नहीं करें।
4. दो से तीन वर्ष का फसल चक्र अपनायें।
5. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें एवं उचित फसल चक्र अपनाएं ।
6. कार्बेण्डेजिम 1 ग्राम/किग्रा. बीज दर से उपचारित कर बुवाई करें ।
7. धनिया की बुवाई 30 अक्टूबर से 15 नवम्बर के मध्य करना उपयुक्त पाया गया जिससे कम से कम लौंगिया रोग का प्रकोप एवं अधिक दाना उपज प्राप्त होती हैं।
8. धनिया फसल में लौंगिया रोग हेतु हैक्साकोनाजोल 5 ई.सी. या प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी का 2 मिली./किग्रा बीज की दर से बीजोपचार करें एवं खडी फसल में हैक्साकोनाजोल 5 ई.सी. या प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी का 2.0 मिली./लीटर की दर से बुवाई के 45, 60 तथा 75 दिन बाद छिड़काव करने पर प्रभावी नियंत्रण पाया गया।

रोग के लक्षण

रबी प्याज उत्पादन की उन्नत तकनीकी एवं पोषक तत्व प्रबंधन

सुश्री मनोज, हरफूल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर, कृषि अनुसंधान केन्द्र एवं कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा (राजस्थान)

प्याज एक महत्वपूर्ण कंदीय सब्जी एवं मसाला फसल है जिसका उपयोग मनुष्य के भोजन में किसी न किसी रुप में अवश्य होता हैं। यह भोजन को स्वादिष्ट बनाने के साथ–साथ उसकी पौष्टिकता को भी बढ़ता है। इसके कंद में आयरन, कैल्शियम एवं विटामीन सी मुख्य रुप में पाया जाता है। इसका उपयोग अनेक बीमारियों जैसे पित्त रोग, शरीर दर्द, खूनी बावासीर, रतौंधी, मलेरिया, कान दर्द आदि के उपचार के लीए औषधि के रुप में भी किया जाता है। साथ ही यह शरीर में कोलेस्ट्राल को नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

रबी मौसम में प्याज की बुवाई नवम्बर–दिसम्बर माह में तथा रोपाई दिसम्बर मध्य से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक की जाती है। यह मौसम प्याज की खेती के लिए सर्वोत्तम व 60 प्रतिशत क्षेत्र में प्याज की खेती इसी मौसम में की जाती हैं। उत्तर भारत के सभी राज्यों में इसी मौसम में प्याज की खेती की जाती है। यह फसल मार्च–अप्रैल में निकाली जाती है इस समय पत्तियाँ अच्छी तरह सूखती है तथा अच्छी तरह सुखा हुआ प्याज अधिक समय तक भण्डारित रहता हैं। रबी प्याज की रोपाई में जितनी देर होती है, उतनी ही उपज घटती जाती है व प्याज का आकार छोटा रह जाता हैं। रबी प्याज लगाने में अधिक देरी होने से फसल देरी से तैयार होती है जिससे उचित बाजार भाव नही प्राप्त हो पाता हैं। यह अच्छी तरह सूख नही पाता हैं, फलस्वरुप भण्डारण में अधिक सड़ने लगता है। दिसम्बर मध्य से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक की रोपाई की प्याज को भण्डारण करना लाभदायक रहता है।

भूमि का चुनाव : प्याज की फसल को सभी प्रकार की मिट्टी में उगा सकते है। प्याज के अच्छे उत्पादन के लिए बलुई दोमट मृदा उपयुक्त रहती है, लेकिन मध्यम काली मृदा में भी प्याज की खेती आसानी से की जा सकती हैं। मृदा का पी एच 6.5–7.5 के मध्य एवं मध्यम कार्बनिक पदार्थ युक्त सर्वोत्तम मानी जाती है। प्याज की अच्छी फसल के लिए मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वो की पर्याप्त मात्रा में होना बहुत आवश्यक हैं।

खेत की तैयारी : प्याज की खेती के लिए भूमि को सुविधानुसार 2–3 बार हल से जुताई करके भुरभूरी बनाए। यदि खेत में अधिक बड़े ढेले हो तो ट्रेक्टर द्वारा रोटोवेटर चलाकर भुरभूरा एवं समतल कर लें।

उन्नत किस्में : पूसा रेड, पूसा सफेद गोल, अर्का कल्याण,भीम रेड एवं नासीक रेड।

बीज की मात्रा : एक एकड़ खेत की बुवाई के लिए नर्सरी तैयार करने हेतू 4–5 किलो बीज की मात्रा पर्याप्त रहती हैं।

बीज उपचार : बीज को रोगों से मुक्त रखने के लिए रासायनिक फफुंदनाशक थायरम 2 ग्राम + बेनोमाइल 50 डब्ल्यू पी 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ प्रति किलो बीजो का उपचार करें। रासायनिक उपचार के बाद बायो–ऐजेन्ट ट्राइकोडरमा विरीडि 2 ग्राम के साथ प्रति किलो बीजो को उपचारित करे। ऐसा करने से नए पौधे को मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारियों से बचाया जा सकता हैं। बीजोपचार सर्वप्रथम कवकनाशी उसके बाद कीटनाशी एवं अन्त में जीवाणुयुक्त दवाई या जीवाणु खाद से करना चाहिए।

नर्सरी में पौध तैयार करना : प्याज की उन्नत पौध तैयार करने के लिए बीज को 3 मीटर लम्बी व 25 सेमी. ऊँची उठी हुई क्यारी में बुवाई करें। 500 वर्ग मीटर क्षेत्र में तैयार की गई नर्सरी की पौध एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए पर्याप्त रहती है। प्रत्येक क्यारी में 40 ग्राम डी.ए.पी., 25 ग्राम यूरिया, 30 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, 10–15 ग्राम फयूराजन डालकर अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दे। नवम्बर–दिसम्बर माह में क्यारीयों को तैयार कर क्लोरोपायरीफॉस (2 मि.ली./ली. पानी) का घोल बनाकर क्यारी की मिट्टी को तर करके उपचारित करे। इससे मिट्टी का तापमान बढ़ने से भूमि जनित कीटाणु एवं रोगाणु नष्ट हो जाते हैं।

अंकुरण पश्चात : अंकूरण के पश्चात पौधो को जड़गलन बीमारी से बचाने के लिए 2 ग्रा. थायरम दवा को 1 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करे। बुवाई के 7–8 सप्ताह पश्चात पौध बुवाई के योग्य हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक : प्याज में खाद एवं उर्वरक की मात्रा जलवायु, मिट्टी के प्रकार एवं लगाए जाने वाले मौसम (खरीफ, पिछेती खरीफ एवं रबी) पर निर्भर करती है। प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरुनगर में किये गए प्रयोग के अनुसार यह पाया गया कि प्याज की फसल 40 टन/हेक्टेयर उपज देने के बदले लगभग 90–95 किलो नत्रजन, 30–35 किलो सल्फर एवं 50–55 किलो पौटाश जमीन से लेती है।

तालिका: प्याज में अनुशंसित रसायनिक उर्वरकों की मात्रा एवं उपयोग का समय

तत्व	विकल्प–1		विकल्प–2		विकल्प–3	
	उर्वरक	मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	उर्वरक	मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	उर्वरक	मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
बुवाई / रोपण के समय						
नत्रजन	यूरिया	163.00	यूरिया	119.00	यूरिया	122.00
			डी.ए.पी.		एन.पी.के. (12:32:16)	156.00
सल्फर	सिंगल सुपर फास्फेट	312.50				
पोटाश	म्यूरेट ऑफ पोटाश	134.00	म्यूरेट ऑफ पोटाश	134.00	म्यूरेट ऑफ पोटाश	92.00
रोपण के 30 दिन बाद						
नत्रजन	यूरिया	81.00				
सल्फर						
पोटाश						
रोपण के 45 दिन बाद						
नत्रजन	यूरिया	81.00				
सल्फर						
पोटाश						

रबी प्याज में पोषक तत्वों की मात्रा व प्रयोग का समय

पोषक तत्व	रोपण के समय	रोपण के 30 दिन बाद	रोपण के 45 दिन बाद	कुल
नत्रजन (कि.ग्रा./हे.)	75.00	37.50	37.50	150.00
सल्फर (कि.ग्रा./हे.)	50.00			50.00
पोटाश (कि.ग्रा./हे.)	80.00			80.00

नत्रजन, सल्फर एवं पौटाश के अलावा प्याज को सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है जिसकी कमी होने पर उत्पादन एवं उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस लिये यह आवश्यक है कि मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने और उचित उत्पादन प्राप्त करने के लिये मृदा परीक्षण आधारित समन्वित पोषण तत्व प्रबंधन को अपनाया जाए। प्याज की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये हरी खाद अथवा 15–20 टन/हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद अथवा 7.5 टन/हेक्टेयर की दर से केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) का प्रयोग खेत की तैयारी के समय अंतिम जुताई से पूर्व करें। प्याज में अनुशंसित रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नीचे बताई गई तालिका के अनुसार सही मात्रा व सही समय पर करें।

प्याज में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निदान

नत्रजन

लक्षण : पत्तियां पीले हरे रंग के सीधे एवं ऊपर की ओर घुमावदार सूखे हुए एवं छोटी रह जाते हैं।

निदान : यूरिया (1 प्रतिशत) या डी.ए.पी. (2 प्रतिशत) का एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

फास्फोरस

लक्षण : फसल की वृद्धि धीमे तथा परिपक्वता में देरी हो जाती है। पत्तियों का रंग हल्का हरा हो जाता है। पत्तियों के ऊपरी शिरे जलने लगते है। कंद के ऊपर के छिलके सूख जाते है।

निदान : अनुशंसित मात्रा में फास्फोरस युक्त खाद का प्रयोग करें। डी.ए.पी. (2 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल पर दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

पोटाश

लक्षण : अधिक मात्रा में पोटाश की कमी होने पर नए पत्तियो पर लक्षण दिखाई देते है। पत्तियों के शिरे जलने लगते है पत्तियां गहरी हरी एवं सीधी हो जाती हैं। पुरानी पत्तियां पीली पड़ने लगती है तथा उनमें धब्बे दिखाई देते हैं।

निदान : पौटोशियम सल्फेट (1 प्रतिशत) का एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

सूक्ष्म पोशक तत्वों का प्रयोग

नत्रजन, सल्फर और पोटाश के अलावा प्याज को सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है। प्याज में तीखापन एलाईल प्रोपाईल डाईसल्फाईड नामक तत्व के कारण होता है जिसको बढ़ाने व उत्पादन में वृद्धि के लिये प्याज को सल्फर नामक सूक्ष्म तत्व की आवश्यकता होती है। सल्फर व जिंक को रोपण से पहले मिट्टी में मिला देना चाहिये। यदि इन सूक्ष्म पोषक तत्वों के अलावा किसी और सूक्ष्म तत्व की भी पौधों को आवश्यकता हो तो मृदा परीक्षण के आधार पर उस पोषक तत्व का प्रयोग फसल पर करें।

प्याज में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

गंधक (सल्फर)

लक्षण : पत्तियां का हरा रंग समाप्त हो जाता है। सभी पत्तियां (पुरानी तथा नई) एक समान पीली दिखाई देती है।

निदान : सल्फर का 15 दिन के अंतराल में दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

मैंगनीज

लक्षण : पत्तियों के शिरे जलने लगते है। पत्तियां का रंग हल्का हो जाता हैं वे ऊपर की ओर घुमावदार हो जाती है। फसल की वृद्धि रुक जाती है। कंद देर से बनते है और गर्दन मोटी हो जाती है।

निदान : मैंगनीज सल्फेट (0.3 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल में दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

जिंक

लक्षण : पत्तियां पर हल्के पीले या सफेद रंग की लंबवत धारियां दिखाई देती है पत्तियों का शीर्ष भाग घुमावदार हो जाता हैं।

निदान : रोपण से पूर्व 25–30 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करें। जिंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल में दो बार पर्णीय छिड़काव करें।

आयरन

लक्षण : आयरन की कमी का लक्षण सर्व प्रथम नई पत्तियां पर दिखाई देता है और वे पूर्ण रुप से पीली हो जाती हैं। नई पत्तियों की मध्य शिराएं पीली हो जाती है।

निदान : फेरस सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल में पर्णीय छिड़काव करें।

खरपतवार नियंत्रण : फसल पर उगने वाले खरपतवार सत्यानाशी (कंटीली) चौलाई, दूब, मोथा, मकड़ा,खरतुवा आदी को प्याज की फसल से निराई–गुडाई कर निकाल दें। रासायनिक खरपतवारनाशक के रुप में प्रोपोक्यूजाफोप 5% ऑक्सीफ्लोरोफेन 12% w/w ई.सी. का प्रयोग कर सकते है व पैडिमेंथीलीन 3.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई के तीन दिन बाद तक 800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से खरपतवारो का अंकुरण नही होता हैं।

जल प्रबंधन : प्याज की रोपाई के पश्चात मौसम तथा मृदा की संरचना को ध्यान में रखते हुए 15–20 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। कदं विकसित होते समय मृदा में उचित नमी होनी चाहिए।

प्याज की फसल खुदाई : सही समय पर करना बहुत जरुरी है। खुदाई का सही समय ऋतु एवं मंडी रेट पर निर्भर करता है, पौधों के ऊपरी हिस्से का 50 प्रतिशत नीचे गिरना दर्शाता है कि फसल खुदाई के लिए तैयार हैं। फसल की खुदाई हाथों से प्याज को उखाड़कर की जाती है। खुदाई के बाद प्याज को 2–3 दिन के लिए अनावश्यक नमी को निकालने के लिए खेत में छोड़ देवे।

उपज : प्याज की खेती में उन्नत तकनीकियाँ अपनाकर ली गई फसल से औसतन 25 से 30 टन उपज प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

भण्डारण : आमतौर पर रबी प्याज में भण्डारण करने की आवश्यकता ज्यादा होती है क्योकि बाजार में तुरंत कम बिकता है। भण्डारण के समय ध्यान रखने योग्य बाते।

- भण्डारण से पूर्व कंदो को अच्छी तरह सुखा लेवे। चमकदार व ठोस कंदो का ही भण्डारण करें।
- नमी रहीत हवादार गृह में भण्डारण करे एवं प्याज की परत 15 से.मी. से अधिक मोटी न हो।
- भण्डारण के समय सड़े–गले कंद समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

❋❋❋

उत्तरी भारत में जौ की उन्नत खेती

देवी लाल किकरालियाँ, अनुज कुमार एवं माया चौधरी
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

जौ भारत की एक महत्वपूर्ण रबी फसल है, जो कि उत्तर भारत में मुख्य रुप से बोई जाती है। जिसे गेहूं की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती है। इसका उपयोग जैसे दाने, पशु आहार, चारा और अनेक औद्योगिक उपयोग (शराब, बेकरी, पेपर, फाइबर पेपर, फाइबर बोर्ड जैसे उत्पाद) बनाने के काम आता है। देश में जौ की खेती उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, गुजरात और जम्मू–कश्मीर में प्रमुख रूप से की जाती है। देश में 2021–22 में जौ का उत्पादन 1.20 मिलियन टन और उत्पादकता 1940 किग्रा/हेक्टेयर रही। देश में 2021–22 में जौ का क्षेत्रफल 0.63 मिलियन हेक्टेयर है।

जौ के फायदे : जौ का उपयोग प्राचीन काल से धार्मिक संस्कारों में होता आया है। यह एक औषधीय फसल है। इसका उपयोग दाने, पशु आहार, चारा और अनेक औद्योगिग उपयोग जैसे शराब, बेकरी, पेपर, फाइबर बोर्ड आदि के लिए किया जाता है। इसके दाने में 10.6 प्रतिशत प्रोटीन, 64 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 2.1 प्रतिशत वसा होता है। जौ के 100 ग्राम दानों में 50 मिलीग्राम कैल्सियम, 6 मिलीग्राम आयरन, 31 मिलीग्राम विटामिन बी 1, 0.10 मिलीग्राम बी 2 व नियासीन पाया जाता है। इसके सेवन से सूजन, कंठमाला, मधुमेह, जलन, मूत्रावरोध, गले की सूजन, ज्वर, मष्तिष्क का प्रहार, पथरी, अतिसार, मोटापा आदि रोगों में काफी फायदा होता है।

जलवायु : जौ की खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु होनी चाहिए। यह समुद्रतल से 14,000 फुट की ऊंचाई पर भी उगाया जा सकता है। इसका पौधा गेहूं के पौधा के मुकाबले अधिक सहनशील होता है।

भूमि का चयन : जौ की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में जैसे बलुई दोमट, बलुई आदि में की जा सकती है। लेकिन इसकी अच्छी उपज के लिए दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। क्षारीय या लवणीय भूमियों में सहनशील किस्मों को उगाना चाहिए। इस बात का ध्यान जरुर रखे कि भूमि में उचित जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए।

खेत की तैयारी : जौ की खेती के लिए खेत की 2–3 बार जुताई करना चाहिए। ताकि खेत में से खरपतवार को अच्छी तरह नष्ट किया जा सके। खेत में पाटा लगाकर भूमि समतल और ढेलों रहित कर लेनी चाहिए। खरीफ फसल की कटाई के बाद हैरो से जुताई करनी चाहिए। इसके बाद 2 क्रोस जुताई हैरो से करके पाटा लगा देना चाहिए। पहले बोयी गई फसल की पराली को हाथों से उठाकर नष्ट कर दें ताकि दीमक का हमला ना हो सके।

बुआई का समय : असिंचित क्षेत्रों में 20 अक्टूबर से 10 नवम्बर तक कर लेनी चाहिये। सिंचित क्षेत्रों में 25 नवम्बर तक बुवाई कर लेना चाहिए। अगर आप विलम्ब से बुवाई कर रहे है तो दिसम्बर के दूसरे पखवाड़े तक बुवाई कर दे।

बीज की मात्रा : जौ की असिंचित क्षेत्र की बुवाई के लिए 100 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की जरुरत होती है। जौ की सिंचित क्षेत्र की बुवाई के लिए 100 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की जरुरत होती है। जौ की पछेती बुवाई के लिए 125 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की जरुरत होती है।

बीज उपचार: बीज उपचार के लिए 2 ग्राम बिटावैक्स या कार्बेंडाजिम से प्रति किलोग्राम बीज उपचारित करें, अथवा थीरम तथा बिटावैक्स या कार्बेंडाजिम को 1:1 के अनुपात से मिलाकर 2:5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करें। दीमक से बचाव के लिए क्लोरपाईरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 4.5 मि.ली से बीज उपचार करें।

बुवाई का तरीका : जौ की बुवाई ट्रैक्टर चलित सीडड्रिल या पलेवा द्वारा की जाती है।

फासला : बुवाई के लिए पंक्ति से पंक्ति का फासला 22.5 से.मी. होना चाहिए। यदि बुवाई देरी से की गई हो तो 18–20 से.मी. फासला रखें।

बीज की गहराई : सिंचाई वाले क्षेत्रों में गहरा 3–5 से.मी. रखें और बारिश वाले क्षेत्रों में 5–8 से.मी. रखें।

खाद एवं रासायनिक उर्वरक : जौ की खेती के लिए बुवाई से पहले खेत तैयार करते समय कम्पोस्ट या कार्बनिक खाद या अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 8–10 टन प्रति एकड़ की दर से मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। खेत में उर्वरक का उपयोग मृदा परिक्षण के आधार पर करना चाहिए।

असिंचित क्षेत्र : असिंचित क्षेत्रों में 40 किलोग्राम नत्रजन, 20 किलोग्राम फास्फेट तथा 20 किलोग्राम पोटाश को बुवाई के समय कूडों में बीज के नीचे डालना चाहिए।

सिंचित क्षेत्र : सिंचित क्षेत्रो में 30 किलोग्राम नत्रजन, 30 किलोग्राम फास्फेट व 20 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय खेत में बीज के साथ डालना चाहिए। तथा बाद में 30 किलोग्राम नत्रजन पहली सिंचाई पर टापड्रेसिंग करनी चहिये। हल्की भूमि में 20 से 30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिए।

ऊसर तथा विलम्ब बुवाई : ऊसर तथा विलम्ब बुवाई के लिए 30 किलोग्राम नत्रजन, 20 किग्रा. फास्फेट बुवाई के समय खेत में डालनी चाहिए। इसके अलावा बाद में 30 किलोग्राम नत्रजन टापड्रेसिंग के रूप में पहली सिंचाई के बाद प्रयोग करना चाहिए। ऊसर भूमि के लिए 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई : जौ की खेती को दो सिंचाईयों की जरुरत होती है । पहली कल्ले फूटते समय बुवाई के 30 से 35 दिन बाद करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई दुग्धावस्था में करनी चाहिए। यदि सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध हो तो कल्ले फूटते समय करनी चाहिए। माल्ट प्रजातियों हेतु जौ की खेती में एक अतिरिक्त सिचाई की जरुरत होती है। ऊसर भूमि में तीन सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पहले कल्ले निकालते समय, दूसरी गाँठ बनते समय तथा तीसरी दाना पड़ते समय करनी चाहिए।

उन्नत किस्में

छिलाकयुक्त प्रजातियाँ : इन किस्मों में मैदानी क्षेत्रों की बुवाई के लिए आजाद (के.–125), के.–144, प्रीती (के.–409), नरेन्द्र जौ–192, नरेन्द्र जौ–3, नरेन्द्र जौ–2, एन. डी. बी.–1173, बी. एच.–946, महामना–113 आदि प्रमुख किस्में है।

छिलका रहित प्रजातियाँ : इन किस्मों में मैदानी क्षेत्रों की बुवाई के लिए गीतांजलि (के–1149), नरेन्द्र जौ–5 (उपासना), डी. डब्ल्यू. आर. यू. बी.–64, डी. डब्ल्यू. आर. बी.–73 आदि प्रमुख किस्में है।

माल्ट हेतु प्रजातियाँ : इन किस्मों में प्रगति के 508–छः धारीय, ऋतम्भरा के. 551–छः धारीय, डी. डब्ल्यू. आर.–28–दो धारीय, रेखा (बी. सी. यू. 73)–दो धारीय आदि प्रमुख किस्में है।

ऊसरीली भूमि : इन किस्मों में नरेन्द्र जौ 1445 (एन. बी. डी. –1445) प्रमुख किस्म है।

खरपतवार नियंत्रण : चौड़े पत्तों वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए खरपतवार के अंकुरण के बाद 2,4–डी. 250 ग्राम को 100 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 30–35 दिनों के बाद डालें। सकरी पत्ती जैसे खरपतवारों की रोकथाम के लिए आइसोप्रोटिउरॉन 75 प्रतिशत डब्लयु. पी. 500 ग्राम को प्रति 100 लीटर पानी या बुवाई के बाद 2 दिन के अंदर पैंडीमैथालीन 30 प्रतिशत ई. सी. 1.4 लीटर को प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

फसल सुरक्षा

प्रमुख कीट

दीमक : यह एक सामजिक कीट है। एवं कालोनिया बनाकर रहता है। एक कालोनी में 90 प्रतिशत श्रमिक, 2 से 3 प्रतिशत सैनिक, एक रानी व एक राजा होते है। श्रमिक पीलापन लिए हुए सफेद रंग के पंखहीन होते है। जो फसलों को हानि पहुंचाते है।

गुजिया वीविल : यह कीट भूरे मटमैले रंग का होता है। जो सूखी जमीन में धेले एवं दरारों के बीच रहते है। यह कीट नए उग रहे पौधों को काट कर हानी पहुंचता है।

माहूँ : यह कीट हरे रंग के शिशु एवं प्रोढ़ माहूँ पत्तियों एवं हरी बालियों से रस चूसकर हानी पहुंचाते है। माहूँ कीट मधुस्राव करते है। जिस पर काली फफूंद उग आती है। जिससे प्रकाश संश्लेक्षण में बांधा उत्पन्न होती है।

रोकथाम

जौ की बुवाई से पहले दीमक के नियंत्रण हेतु क्लोरपाईरीफॉस 20 प्रतिशत ई. सी. की 3 मिली. प्रति लीटर किग्रा. बीज की दर से बीज को शोधित करना चाहिए। ब्यूवेरिया बैसियाना 1.15 बायोपेस्टीसाइड (जैव कीटनाशी) की 2.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर 60 से 75 किग्रा. गोबर की

खाद में मिलाकर हल्के पानी का छीटा देकर 8 से 10 दिन छाया में रखकर बुवाई से पूर्व आखिरी जुताई के समय भूमि में मिलाने से दीमक सहित भूमि जनित कीटों का नियंत्रण हो जाता है। खड़ी फसल में दीमक या गुजिया के नियंत्रण हेतु क्लोरिपाईरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए। माहूँ कीट के नियंत्रण के लिए डाई मेथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. अथवा ऑक्सीडेमेटान–मिथाइल 25 प्रतिशत ई.सी. के 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर अथवा थायोमेथाक्सान 25 प्रतिशत डब्ल्यू. जी. 500 ग्राम लगभग 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग

आवृत कंडुआ : जौ के इस रोग में बालियो के दानों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है। जो मजबूत झिल्ली द्वारा ढका होता है। मड़ाई के समय फूटकर स्वस्थ बीजों से चिपक जाता है।

पत्ती का धारीदार रोग : इस रोग में पत्ती की नसों में पीली धारियां बन जाती है। जो बाद में गहरे भूरे रंग में बदल जाती है। जिस पर फफूंदी के असंख्य बीजाणु बन जाते है।

पत्ती का धब्बेदार रोग : इस रोग में पत्तियों पर अंडाकार भूरे रंग के धब्बे बनते है। जो बाद में पूरी पत्तियों पर फैल जाते है।

अनावृत कंडुआ : इस रोग में बालियों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है। जो सफ़ेद झिल्ली द्वारा ढका रहता है। बाद में झिल्ली फट जाती है। और फफूंदी के असंख्य बीजाणु हवा में फैल जाते है। जो स्वस्थ्य बालियों में फूल आते समय उनका संक्रमण करते है।

गेरुई रोग : गेरुई काली, भूरे एवं पीले रंग की होती है। गेरुई की फफूंद के फफोले पत्तियों पर पड़ जाते है। जो बाद में बिखर कर अन्य पत्तियों को प्रभावित करते है। काली गेरुई तना तथा पत्तियां दोनों को प्रभावित करती है।

रोकथाम

बीज उपचार : अनावृत कंडुवा, आवृत कंडुवा, पत्ती का धारीदार रोग एवं पत्ती के धब्बे दार रोगों के नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. 2 ग्राम अथवा कार्बाक्सिन 75 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. की 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीज शोधन कर बुवाई करना चाहिए।

भूमि उपचार : भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण के लिए बायोपस्टीसाइड (जैव कवकनाशी) ट्राईकोडरमा विरिडी 1 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. अथवा ट्राइकोडरमा हारजिएनम 2 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. 2.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर 60 से 70 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद में मिलकर हल्के पानी का छींटा देकर 8 से 10 दिन छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देने से इन रोगों के प्रबन्धन में सहायक होता है।

पर्णीय उपचार : गेरुई एवं पत्ती धब्बा रोग एवं पत्ती धार रोग के नियंत्रण हेतु थाईरम 80 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. की 2.0 किग्रा. अथवा मेन्कोजेब 75 डब्ल्यू. पी. को 2.0 किग्रा. अथवा जिनेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. की 2.0 किग्रा. प्रति हेक्टेयर लगभग 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। गेरुई के नियंत्रण के लिए प्रोपीकोनोजोल 25 प्रतिशत ई.सी. की 500 मिली. प्रति हेक्टेयर पानी लगभग 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई, सफाई और सुखाना

मार्च अप्रैल में कटाई की जाती हैं। जब पौधों का डंठल बिलकुल सूख जाए और झुकाने पर आसानी से टूट जाए, जो मार्च अप्रैल में पकी हुई फसल को काटना चाहिए। फिर गट्ठरों में बाँधकर शीघ्र मड़ाई कर लेनी चाहिए। क्योंकि इन दिनों तूफान एवं वर्षा का अधिक डर रहता है।

भंडारण : फसल की कटाई करने के बाद अच्छी प्रकार सूखाकर थ्रेसर द्वारा दाने को भूसे से अलग कर देना चाहिये। तथा अच्छी प्रकार सूखाकर एवं साफ करके बोरों में भरकर सुरक्षित स्थान पर भण्डारित कर लेना चाहिये। भंडारण के लिए नमी रहित स्थान का चयन करना चाहिए।

उपज क्षमता : 15 से 20 क्विंटल प्रति बीघा।

सब्जियों के अधिक उत्पादन की नई प्रौधोगिकी : प्लास्टिक लो टनल

सुनिल कुमार मीणा, भरतलाल मीणा एवं अशोक कुमार मीणा
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

प्लास्टिक लो–टनल सब्जी उत्पादन की सस्ती, कारगर व व्यवहारिक संरक्षित संरचना है। इस तकनीक द्वारा विपरीत मौसम (अधिक सर्दी, पाला) में भी अच्छा सब्जी उत्पादन लिया जा सकता है। साथ ही गर्म वातावरण वाली सब्जियों को अधिक ठंड के समय खुले वातावरण में इस तकनीक से बोई जाकर मुख्य फसल से पहले उत्पादन लेकर 2–3 गुणा अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

लो–टनल ऐसी संरक्षित संरचनाएं है जिन्हे मुख्य खेत में फसल की रोपाई के बाद प्रत्येक फसल क्यारियों के ऊपर फसल को कम तापमान से होने वाले नुकसान से बचाने के लिये कम ऊँचाई पर प्लास्टिक ढंककर बनाया जाता है। ऐसी संरचनाये बनाने के लिए पहले क्यारिया तैयार की जाती है तथा उन पर ड्रिप सिंचाई हेतु पाईप फैलाकर उन पर पतले तार के हुप्स इस प्रकार लगाये जाते है जिससे हुप्स के दोनो सिरो की दूरी 40 से 60 सेमी रहे तथा इनको 1.5 से 2 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। हुप्स तार को मोडकर भी बनाये जा सकते है तथा इन्हे 2 से 2.5 मीटर की दूरी पर थोडा सा अधिक उंचाई (60 सेमी) पर लगाया जाता है। बाद में बेल वाली सब्जियों की तैयार पौध मुख्य खेत मे रोपाई करके दोपहर बाद क्यारियो पर प्लास्टिक चढाया जाता है। प्लास्टिक की मोटाई 20 से 30 माईक्रोन होनी चाहिये तथा लो टनल बनाने के लिए हमेशा पारदर्शी प्लास्टिक का ही प्रयोग करें। यदि रात को तापमान 5 डिग्री सेन्टीग्रेट से कम है तो 7 से 10 दिन तक प्लास्टिक मे छेद करने की आवश्यकता नही है लेकिन उसके बाद प्लास्टिक में पूर्व दिशा की ओर ऊपर से नीचे की ओर छोटे छोटे छेद कर दिये जाते है तथा जैसे जैसे तापमान बढता है इन छेदो का आकार भी बढाया जाता है। पहले छेद 2 से 3 मीटर की दूरी पर बनाये जाते है बाद मे इन्हे 1 मीटर की दूरी पर बना दिया जाता है।

इस प्रकार पूरी प्लास्टिक को आवश्यकतानुसार तथा तापमान को ध्यान में रखते हुये फरवरी के अन्त या मार्च के प्रथम सप्ताह मे फसल के ऊपर से पूर्ण रूप से हटा दिया जाता है। इस समय तक फसल काफी बढ चुकी होती है तथा उससे फल स्थापन प्रारंभ हो चुका होता है इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं में मुख्यतः मिर्च, टमाटर, खरबूजा, चप्पन कद्दू, खीरा, तरबूज, करेला, टिण्डा, लौकी व अन्य कद्दूवर्गीय सब्जियों को मुख्य मौसम से 30 से 60 दिन पहले उगाया जा सकता है। चप्पन कद्दू जैसी फसल की रोपाई तो दिसम्बर व जनवरी माह मे तथा खरबूजे की फसल को जनवरी के अंत या फरवरी के प्रथम सप्ताह मे लगातार 30 से 60 दिन तक अगेती उगाया जा सकता है इस प्रकार फसलों के बाजार से अधिक भाव लेकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। टनल बनाने से पौधे के आसपास का सुक्ष्म वातावरण काफी बदल जाता है। तथा दिन के समय जब अच्छी प्रकार से धूप निकलती हो तो टनल का तापमान 10 से 12 डिग्री बढ जाता है। जिससे कम तापमान होते हुये भी इन फसलो की बढवार तेजी से होती है तथा रात के समय टनल मे पौधो का पाले से बचाव भी होता है। यह तकनीक उत्तर भारत के मैदानी खासकर शहरो के चारो ओर रहने वाले किसानों के लिए लाभप्रद है। इस तकनीक को अपनाने से पूर्व किसानो को इन बेल वाली सब्जियों की पौध को भी संरक्षित संरचनाओं में ही तैयार करना होगा।

प्लास्टिक लो–टनल के लाभ

- प्लास्टिक लो–टनल से सर्दियों में अधिक ठंड के समय भी अच्छा फसल उत्पादन लिया जा सकता है।
- प्लास्टिक लो–टनल में फसल की बढ़वार अच्छी होती है व पाले से बचाया जा सकता है।
- प्लास्टिक टनल में सब्जियों के बीज का जमाव शीघ्र होने और पौधों की अच्छी बढ़वार से कम समय में स्वस्थ पौध तैयार की जा सकती है। जिसकी बिक्री करके अतिरिक्त आमदनी भी कमा सकतें है।
- इस तकनीक में सामान्य फसल से 30–40 दिन अगेती फसल लेकर अधिक बाजार भाव प्राप्त करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है।
- प्लास्टिक लो–टनल तकनीक से फसल में कीट व व्याधियों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है।
- प्लास्टिक–टनल संरचना ग्रीन हाऊस जैसा प्रभाव पैदा करती है। इसमें कार्बन डाई ऑक्साइड अधिक रहने से पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया अधिक होती है।

कैसे करें फसलों में रोग व्याधियों की पहचान एवं प्रभावी प्रबंधन

डी.एल. यादव एवं सी.बी. मीणा

कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा

भारत एक कृषि प्रधान देश है भारत की लगभग 58 प्रतिशत आबादी के लिए कृषि आजीविका का प्राथमिक स्रोत है। भारतीय खाद्य उद्योग बहुत बड़ी वृद्धि के लिए तैयार है और हर साल विश्व खाद्य व्यापार में मूल्यवर्धन की अपार संभावनाओं के कारण अपना योगदान बढ़ाता जा रहा है, विशेष रूप से खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अंदर। कृषि हमारे आर्थिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम रही है और भारत के किसान कृषि को एक उत्सव के रूप में मानते हैं फसलों का उत्पादन कई कारकों से प्रभावित होता है परन्तु फसलों में लगने वाली बीमारियों से नुकसान सबसे आम बात है ये बीमारियां जैविक व अजैविक कारकों के द्वारा हो सकती है देखा गया है कि रोगजनक संक्रमणों के कारण फसल उपज में 20 से 40 प्रतिशत तक की हानि होती है ।कटाई और कटाई के बाद के प्रसंस्करण के दौरान फसलों में रोग प्रेरित क्षति को कम करने के साथ साथ उत्पादकता को अधिकतम करने ओर कृषि स्थिरता सुनिश्चित करने के लिये उन्नत रोग का पता लगाना और फसलों में रोकथाम करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है अतः रोगों का उपचार समय पर किया जाना चाहिए

क्यों आवश्यक हे बीमारी के कारण की पहचान ?

अक्सर देखा गया है कि पौधों में बीमारियों का शुरुआती लक्षणों के आधार पर पता नहीं लगता है कि फसल में कौन सी बीमारी है जो बैक्टीरिया जनित है वायरस जनित है या फिर यह किसी अन्य कारण से है। कभी कभी किसी आवश्यक तत्व की कमी के कारण भी पौधे में बिमारी जैसे लक्षण दिखते हैं अतः यह समझना आवश्यक है की पौधे द्वारा प्रदर्शित किए गए विशेष लक्षण किसी आवश्यक तत्व की कमी कि वजह से है या फिर बीमारी की वजह से। ये भी देखा गया है कि जानकारी के अभाव में कई बार किसानों के द्वारा अनावश्यक कीटनाशकों के स्प्रे कर दिए जाते हैं जिससे किसानों की अनावश्यक लागत बढ़ जाती है अगर हम मनुष्य एवं पौधों की बात करें तो मनुष्य एक बार बीमार होने के बाद रिकवरी कर लेता है परन्तु पौधों पर बीमारी आने के बाद बिना प्रभावी प्रबंधन के रिकवरी करना मुश्किल होता है जिससे पौधे की मृत्यु हो जाती है

रोग की सही जानकारी न होने की वजह से किसानों को बहुत नुकसान का सामना करना पड़ता है एवं अंधाधुंध कीटनाशकों के प्रयोग से पर्यावरण भी असंतुलित हो जाता है इसके साथ ही मृदा का स्वास्थ्य खराब होता है एवं मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में कमी आ जाती है इस तरीके से किसान को अप्रत्यक्ष रूप से भी नुकसान का सामना करना पड़ता है अतः इन सभी समस्याओं को कम करने के लिए उत्तम प्रबंधन आवश्यक है एवं उत्तम प्रबंधन हेतु रोगों और रोग कारकों की पहचान आवश्यक है जिससे कि पौधों पर फाइटो टॉक्सिसिटी को भी कम किया जा सकें।

पादप रोगों की पहचान के समय ध्यान रखने बातें

हम जानते हैं कि बीमारी फैलने के लिए सामान्यतः तीन कारक जिम्मेदार होते हैं

- सहनशील किस्म
- रोगकारक की उग्रता
- अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थिति

इन तीन कारकों के मिलने से बिमारी उत्पन्न होती है।

हम ये भी जानते हैं कि प्रकृति में हर चीज को समय के साथ बनाया है जैसे खरीफ समय की बीमारी रबी समय में नहीं आती ठीक उसी प्रकार रबी समय की बीमारी खरीफ में नहीं आती इसके अतिरिक्तत गेहूं की बीमारियां चावल फसल पर नहीं आती, आलू की बीमारियां बैंगन पर नहीं आती इसीलिए रोगों की पहचान से पहले हमें फसल एवं फसल में लगने वाले रोगों के बारे में अच्छी तरह से जान लेना चाहिए फसलों पर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने पर उनके लक्षण आसानी से देखे जा सकते हैं जिनकी आधार पर हम ये जान सकते हैं की रोग विषाणुजनित है बैक्टीरिया जनित है फफूंद जनित है या फिर किसी अन्य कारण से। रोग की पहचान करते समय पर्यावरण में दिन का तापमान रात का तापमान एवं आद्रता के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए हम ये जानते हैं कि रोग के आने से पहले उसमें रोगकारक के प्रथम स्रोत का अहम योगदान रहता है जैसे कि ऊसपोर, क्लेमाइडोसपोर, कोनिडिया या फिर बीज एवं भूमि जनय रोगकारक ।

यह भी देखा गया है कि खेत में पिछले सीजन में बीमारी थी उस खेत में अगले सीजन में भी वही फसल बोने पर बिमारी के आने की संभावना बढ़ जाती है उदाहरण के लिए चने का उख्टा, धनिये में स्टेम गोल, सरसों में स्टेम रोट इत्यादि। संक्षिप्त रूप में कहा जाए तो किसी भी रोग कारक की पहचान के समय पौधे की सहनशील किस्म , रोंग करने वाले रोगकारक की प्रकृति एवं कौन सी पर्यावरणीय परिस्थितियां रोग को अधिक मात्रा में फैलाने में सहायक है के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है।

रोगों के पहचान करने की आसान विधिया

रोगों की पहचान कई तरीके से किया जा सकता है जिसमें कुछ वैज्ञानिक विधियां भी सम्मिलित है

रोगों के लक्षणों के आधार पर : बहुत बीमारियां ऐसी हैं जिनका पौधे पर लक्षणों के आधार पर बिमारी का पता लगाया जा सकता है उदाहरण के लिए चने की उखटा रोग में पौधे पीले पड़ने लगते हैं और ऊपर से नीचे की ओर पत्तियाँ सूखने लगती है एवं अंत में पौधे सूखकर मर जाते हैं इसी तरह अरहर के उखटा रोग में रोगी पौधे की पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा पौधे मुरझा कर सूख जाते हैं एवं पौधे के तने का निचला भाग काला पड़ जाता है। आलू के पछेती अंगमारी बीमारी पत्तियों पर किनारे वाले भाग पर भूरे धब्बे शुरू होकर पौधे के अन्य भागों पर फैल जाते हैं एवं अनुकूल परिस्थितियों में पौधों का संपूर्ण भाग नष्ट हो जाता है, बैंगन एवं टमाटर के मलानी रोग में पानी की कमी न होने पर भी पौधे मुरझा कर सूख जाते हैं एवं जड़ें काली हो जाती है इसी तरह बहुत सारी बीमारियों का लक्षणों के आधार पर पता लगाया जाना संभव है परन्तु बहुत सी बीमारियां ऐसी हैं जिनका लक्षणों के आधार पर सही रोगकारक एवं सही रोग का पता लगाना संभव नहीं है इस हेतु सूक्ष्मदर्शी द्वारा या आण्विक स्तर पर रोगकारक का पता लगाया जाता है

सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा : रोग कारक को पहचानने का प्रयोगशालिक विधि है लेबोरेटरी में सूक्ष्मदर्शी द्वारा रोग कारकों को उनके वास्तविक आकार से कई 1000 गुना बड़ा करके देखा जाना संभव है जिससे कि रोगकारक को पहचानने के लिए काफी बेहतर परिणाम मिलते हैं।

आणविक विधियों द्वारा: आणविक विधियों का प्रयोग करके रोगों की प्रत्यक्ष पहचान की जा सकती है एवं इन विधियों द्वारा स्पीसीज लेवल पर रोक कारकों का पता लगाया जा सकता है। इन विधियों में रोग पैदा करने वाले रोग कारकों जैसे बैक्टीरिया कवक और वायरस का सीधे पता लगाया जाता है ताकि रोग की सटीक पहचान हो सके इसकी कुछ विधियां सर्वाधिक उपयोग में लाई जाती है जैसे–

पोलीमरेज चौन रिएक्शन (PCR) : इस तकनीक का उपयोग व्यापक रूप से पौधों के रोगजनकों का पता लगाने के लिए किया जाता है पीसीआर तकनीक डीएनए निष्कर्षण की प्रभावकारिता पर निर्भर करता है एवं यह बैक्टीरिया कवक और वायरल न्यूक्लीक एसिड के आधार पर पौधों की बीमारियों के तेजी से निदान के लिए आवश्यक है।

ELISA (एंजाइम लिंक्ड इम्यूनो सोरबेंट एससे) : इस विधि द्वारा एंटीबॉडी और रंग परिवर्तन के आधार पर रोगों की पहचान की जाती है इस पद्धति में वायरस बैक्टीरिया और कवक से लक्ष्य एंटिटी को विशेष रूप से एक एंजाइम संयुग्मित एंटीबॉडी के साथ बांधने के लिए बनाया जाता है एवं इन की परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप होने वाले रंग परिवर्तनों के आधार पर रोग कारक का पता लगाया जाता है।

सारांश

संक्षिप्त रूप में कहा जाए तो रोगकारक की पहचान सबसे आवश्यक है उदाहरण के तौर पर अगर फसल में बीमारी बैक्टीरियल ब्लाइट है पर पता न लगने के कारण किसान द्वारा फफूंदनाशी का छिड़काव कर दिया जाए तो इससे अनावश्यक लागत के साथ साथ पर्यावरण एवं मिट्टी को भी बहुत अधिक नुकसान होता है अतः बीमारी की सही पहचान जरूरी है।

नर्सरी में लगने वाली बीमारियों का प्रबंधन

सब्जियों का जैसे मिर्च, टमाटर, बैंगन, गोभी इत्यादि को तैयार करने से पहले नर्सरी तैयार की जाती है नर्सरी में आर्द्र गलन रोग सर्वाधिक देखने को मिलता है जो कि फफूंद जनित है इसके लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.2 प्रतिशत एवं मैनकोजेब 0.2 प्रतिशत या ट्राइकोडर्मा का उपयोग इनमें से किसी एक का उपयोग कर सकते हैं। हमें यह देखने को मिलता है कि नर्सरी में उठी हुई तैयारियों पर नर्सरी तैयार करने से रोग की उग्रता कम होती है एवं इसके साथ ही उस समय पानी का ज्यादा उपयोग न कर के वहाँ कम नमी वाला वातावरण रखने से रोग की तीव्रता कम होती है।

गेहूँ का आल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग : यह रोग नमी की अधिकता से उग्र हो सकता है अतः रोग नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब 1 से 1.25 किग्रा प्रति हैक्टर छिड़काव करवायें।

गेहूँ का कण्ड़वा रोग : इस रोग से बचाव हेतु बुवाई पूर्व बीज उपचार करना चाहिए। अतः गेहूँ के बीज को 2 ग्राम बाविस्टिन या 2 ग्राम टेबुकोनाजोल 5.36 प्रतिशत (रेक्सिल) या 2 ग्राम वीटावेक्स प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें।

सरसों की तुलासिता व सफेद रोली : तुलासिता व सफेद रोली रोगो के प्रथम लक्षण दिखाई देते ही डेढ़ किलो मैंकोजेब प्रति हैक्टर का 0.2 प्रतिशत घोल बना कर छिड़काव करवायें।

सरसों का तना सड़न : सरसों की पुश्प आने की अवस्था सबसे नाजुक अवस्था है। इस रोग की रोकथाम कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत घोल के छिड़काव से कर सकते है।

धनियां का लोंगिया (स्टैमगाल) रोग : अगर खेत में लौगियां रोग का इतिहास रहा है एवं मौसम में नमी तथा उमस हो तो रोग की रोकथाम हेतु जल नियंत्रण की सलाह दी जायें। खडी फसल में रोकथाम के लिए बुवाई के 45, 60 एवं 75–90 दिन पर हेक्साकोनाजोल या प्रोपीकोनोजोल नामक दवाई 2 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से अथवा केलेक्जिन / बेलेटान 1 ग्राम प्रतिलीटर पानी के हिसाब से घोल बना कर छिडकाव करें तथा आवश्यकतानुसार छिड़काव दोहरावें।

अफीम का तुलासिता रोग : तुलासिता रोग से बचाव के लिए मेंकोजेब 0.2 प्रतिशत का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

लहसुन का तुलासिता रोग : रोग की रोकथाम हेतु मेंकोजेब 0.2 प्रतिशत छिड़काव करने की सलाह दें।

चने का सफेद तना गलन : भूमी के समीप तना सड जाता है व सफेद कवक दिखाई देती है। रोग दिखाई देते ही कार्बेन्डाजिम 0.5 प्रतिशत या बेनोमिल 0.5 प्रतिशत का घोल छिडकाव करे।

आलू का झुलसा

आलू की खड़ी फसल में रोग दिखाई देते ही पहला छिड़काव मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. (2.5 ग्राम प्रति लीटर), दूसरा छिड़काव डाइफेनकानाजोल 25 ई.सी. (0.5 ग्राम प्रति लीटर) तीसरा छिड़काव मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. (2.5 ग्राम प्रति लीटर) दस दिन के अंतराल पर घोल बनाकर छिड़काव करें।

आलू का तना उत्तक क्षय रोग के कारण तना एवं पर्णवृन्त काले पड़ने लगते हैं। रोगग्रस्त स्थान से तना कठोर पड़ जाता है और थोड़ा सा जोर लगाने से तना आसानी से टूट जाता है, डालियां मुरझाने लगती हैं और पौधे सूखने लगते हैं। अतः आलू की खड़ी फसल में तना उत्तक क्षय रोग रोग के लक्षण दिखाई देते ही फिप्रोनिल 5% SC नामक दवा (15 मिलीलीटर दवा 10 लीटर पानी में) या डायफेन्थियुरोन 50 डब्ल्यू.पी. (10 ग्राम दवा 10 लीटर पानी में) का छिड़काव करें।

आम का एन्थ्रेक्नोज रोग से बचाव के लिए मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या कोपर ऑक्सी क्लोराइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें।

नींबू का केन्कर हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 2.5 ग्राम + कॉपर ओक्सीक्लोराइड 30 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़कें।

अमरूद का एन्थ्रेक्नोज मेंकोजेब 20 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करावें।

पपीता का तना गलन खेत में पानी का निकास ठीक रखें। रोगग्रस्त भाग को हटाकर कॉपर ओक्सीक्लोराइड का लेप करायें। रोग अधिक लगने पर तने को जड़ से उखाड़ दें।

❋❋❋

कृषि क्षेत्र में सूचना प्रौधोगिकी का अनुप्रयोग

सुरेंद्र कुमार, प्रियंका एवं सरिता
कृषि विश्वविधालय जोधपुर एवं कृषि विश्वविधालय कोटा

वर्तमान समय में सूचना प्रौधोगिकी को अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में विकास का एक माध्यम माना जा रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ती हुयी अर्थव्यवस्था है और इसके विकास का मूल आधार कृषि क्षेत्र है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन काल से ही कृषि हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी रही है तथापि कृषि क्षेत्र में ऊँची वृद्धि दर की प्राप्ति अभी भी एक दिवा स्वप्न के समान बनी हुई है इसके बहुत से कारण है सबसे प्रमुख कारण है किसानों का एक बड़ा तबका परम्परागत खेती पर ही निर्भर है तदापि जनसँख्या के बढ़ते दवाब ने अनिवार्य कर दिया है की कृषि क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीकी का व्यापक प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाये जिससे किसान अपनी सीमित भूमि एवं संसाधनों में ही अधिक मात्रा में खाद्यान एवं अधिक गुणवत्ता युक्त कृषि उत्पाद प्राप्त कर स्वयं भी लाभान्वित हो सके व हमारी अर्थव्यवस्था को गति प्रदान कर सके।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा समय–समय पर किसानों को वैज्ञानिक ढंग से खेती तथा सूचना प्रौधोगिकी का उपयोग कैसे किया जाए, इसके लिए किसानों को प्रशिक्षण समय–समय पर दिए जाते है, जिनका मुल उद्देश्य किसानों को सूचना तकनीक का उपयोग कर अपने आप को आत्मनिर्भर बनाना तथा देश को खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाना है। सूचना प्रौधोगिकी का मुख्य उद्देश्य कृषि एवं उससे संबधित तकनीक को किसानो के तक पहुँचाना एवं उनके कृषि से संबधित सारे समस्याओं का निवारण। भारत सरकार के द्वारा "डीजीटल इंडिया" कार्यक्रम के तहत प्रत्येक गाँव को इन्टरनेट से जोड़ा जा रहा है इसका मुख्य लक्ष्य देश के हरेक वर्ग तक सूचना तकनीक का लाभ मिले एवं इसका उपयोग किसान, कृषि से सम्बधित समस्याओ का समाधान, जैसे– किसानो को मौसम के अनुसार कौन सी फसल एवं किस्म बोनी चाहिए जिससे अधिक उपज के साथ–साथ अधिक लाभ मिले।

किसान कॉल सेन्टर : किसान कॉल सेन्टर का आरम्भ 21 जनवरी 2004 को कृषि मंत्रालय द्वारा किया गया है। किसान कॉल सेन्टर के माध्यम से निःशुल्क फोन सेवा (18001801551) एवं सन्देश द्वारा जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। इन काल सेंटर्स जरिये किसानो को स्थानीय भाषा में संबधित समस्याओं का समाधान किया जाता है।

किसान चौपाल : कृषि विज्ञान केन्द्र के माध्यम से संचालित यह एक सफल मॉडल है। इस माध्यम द्वारा कृषि वैज्ञानिक किसानों की जरूरत को आंकलन के आधार पर किसान चौपाल गाँव में आयोजित की जाती है। किसान चौपाल में किसानों के खेती, फसल उत्पादन, पशुपालन एवं इससे संबधित समस्याओं को सुना जाता है और सूचना प्रौधोगिकी के द्वारा इसे सुलझाया जाता है जो निम्न माध्यम है–

- विडियो तकनीक के रूप में।
- पावर पांइट प्रदर्शन के रूप में ।
- संवाद तकनीक के रूप में।

ई0 चौपाल : ई0 चौपाल भारतीय किसानो को दलालों व मध्यस्थों के चंगुल से बचाने के लिये आई.टी.सी. के द्वारा वेबसाइट आधारित सेवा प्रदान की जा रही है। यह वस्तुतः इण्टरनेट सुविधा वाली कम्प्यूटरयुक्त व्यवस्था है जो आई.टी.सी. द्वारा संचालित ई–चौपाल वेबसाइट का प्रयोग करता है। ई–चौपाल के जरिये किसानो को उनकी उपज की बिक्री ऑन लाइन मण्डी में करायी जाती है ताकि मध्यस्थों कीं भूमिका न रह जाये व किसानो को उनकी उपज का उचित मूल्य मिल सके। चौपाल द्वारा किसान अपनी उपज ऑनलाइन मंडी के द्वारा उच्च लागत से बेचते है जिससे उनको शुद्ध मुनाफा मिलता है ।ICT द्वारा किसानों को उनके उत्पादों की गुणवता में सुधार करने में मदद करता है। ई0 चौपाल सेवा शुरू होने के बाद से किसानों के उत्पादन की गुणवता तथा पैदावार में वृद्धि सुधार की वजह से उनके आय के स्तर में वृद्धि, और लेन देन में गिरावट आयी है।

ग्रामीण ज्ञान केन्द्र : ग्रामीण ज्ञान केन्द्र, त्वरित कृषि क्षेत्र मे उपलब्ध जानकारी को किसान तक पहुँच प्रदान करने, फसल उत्पादन से विपणन के लिए सूचना के प्रसार केन्द्र के रूप में कार्य करता है। जिसके माध्यम से कृषि बागवानी, मत्स्य, पशुधन, जल संसाधन, टेली स्वास्थ, जागरूकता कार्यक्रम, महिला सशक्तिकरण, कंप्यूटर शिक्षा तथा आजीविका सहायता के लिए कौशल विकास व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे नई पीढ़ी सूचना प्रौधोगिकी के माध्यम का उपयोग कर देश के विकास में भागीदार बने।

संदेश पाठक आवेदन : संदेश पाठक का मुख्य उदेश्य वैसे किसान जो साक्षर या अनपढ़ है जो संदेश पढ़ नहीं सकते और उन्हें खेती की समस्याओं को हल करने के लिए भारतीय भाषा में "संदेश रीडर आवेदक" जो द्वारा विकसीत किया गया पोर्टल है जो संदेश को भारतीय भाषा के अनुसार बोल कर सुनाता है तथा नवीनतम सूचना प्रौधोगिकी के माध्यम से खेती एवं उससे जुड़ी हुई हर समस्या को हल करने जैसे– कीट रोग, उवर्रक या खरपतवार प्रबंधन और मौसम से संबधित जानकारी दी जाती है।

किसान क्रेडिट कार्ड : यह योजना भारत सरकार, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा शुरू किया गया कार्यक्रम है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य किसानों को समय पर ऋण उपलब्ध कराना है। वैसे किसान जिन्हें बार बार ऋण के लिए बैंको के पास जाना पड़ता था, और बार–बार बैंकिग प्रक्रिया द्वारा गुजरना पड़ता था जिससे किसानों को जरूरत के समय ऋण नहीं मिल पाता था। अतः किसान क्रेडिट कार्ड द्वारा ऋण किसानों को समय से मिल जाता है और खेती में नुकसान होने पर रकम अदायगी के लिए अवधि में असानी से परिवर्तन किया जा सकता है। जिससे किसानों को अधिक परेशानी भी नहीं होती है एवं अतिरिक्त बोझ भी नही पड़ता है।

ई0 कृषि : सूचना प्रौधोगिकी के माध्यम से खेती में उभर रहा नवीनतम् तकनीक है। इसके द्वारा किसानों को विभिन्न सोशल वेबसाइट जैसे– फेसबुक, वाहटस ऐप के जरिए किसानों को समूह में जोड़ा जाता है तथा उस समूह में विभिन्न क्षेत्रों के कृषि वैज्ञानिक एवं सलाहकार जुड़े रहते है जो किसानो की समस्याओं को सुनते है और उन समस्याओं की निदान की जाती है तथा भारत सरकार की विभिन्न कृषि पोर्टल के माध्यम से कृषि में अधिक उत्पादकता, उच्च उपज बीज का चयन, क्षेत्रों के अनुसार उच्च उपज देन वाली बीज तथा मौसम के प्रतिकुल प्रभाव से फसल की बचाव संबधित जानकारी कृषि पोर्टल पर उपलब्ध रहती है।

कृषि पर्यटन : युवाओं हेतु अनोखा उद्यम

अनिल कुल्हैरी एवं प्रमोद
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि–पर्यटन (Agri-Tourism)

कृषि–पर्यटन को वाणिज्यिक उद्यम के एक प्रकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कृषि उत्पादन और प्रसंस्करण को पर्यटन के साथ जोड़ता है, जहाँ आगंतुकों को मनोरंजन देने और शिक्षित करने के उद्देश्य से एक फार्म, रैंच या अन्य कृषि व्यवसाय स्थलों की ओर आकर्षित किया जाता है और इस प्रकार आय का सृजन किया जाता है। कृषि–पर्यटन को पर्यटन और कृषि का चौराहा कहा जा सकता है। यह एक गैर–शहरी आतिथ्य उत्पाद (Non-Urban Hospitality Product) है जो प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के साथ कृषि जीवन शैली, संस्कृति और विरासत की पूर्ति करता है। कृषि–पर्यटन ने पर्यटन उद्योग में पर्याप्त आकर्षण प्राप्त किया है।

कृषि–पर्यटन उद्योग का विकास दर परिदृश्य

कृषि–पर्यटन, पर्यटन उद्योग का एक अलग और उभरता हुआ बाजार खंड है। वर्ष 2019 में वैश्विक स्तर पर कृषि पर्यटन बाजार का मूल्य 46 बिलियन डॉलर था और वर्ष 2020–21 के बीच 13.4 % की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) के साथ वर्ष 2027 तक इसके 62.98 बिलियन डॉलर तक पहुँच जाने की उम्मीद है। भारत में कृषि–पर्यटन की नींव सर्वप्रथम महाराष्ट्र के बारामती में स्थित कृषि पर्यटन विकास निगम (Agri Tourism Development Corporation-ATDC, एटीडीसी) के गठन के साथ पड़ी थी। ATDC की स्थापना वर्ष 2004 में कृषक समुदाय के एक उद्यमी पांडुरंग तवारे ने की थी तथा वर्तमान में कृषि–पर्यटन से भारत का राजस्व 20% की वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है।

कृषि–पर्यटन का महत्त्व क्यों बढ़ रहा है?

पर्यावरण–अनुकूल पर्यटन : जलवायु परिवर्तन की तेज गति और पर्यटन प्रेरित प्रदूषण स्तर एवं ग्रीनहाउस गैस (GHG) उत्सर्जन के परिणामस्वरूप पर्यटन आकर्षण के रूप में प्राकृतिक एवं ग्रामीण स्थलों की मांग बढ़ रही है और यह कृषि–पर्यटन जैसे पर्यावरण–अनुकूल पर्यटन अनुभवों को मुख्यधारा व्यवसाय बना सकता है।

ग्रामीण 'पतन' को संबोधित करने की क्षमता : बढ़ती हुई इनपुट लागत, अस्थिर रिटर्न, जलवायु प्रतिकूलता, भूमि विखंडन आदि के कारण भारतीय कृषि तनाव में है। यद्यपि यह अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है, किसान वैकल्पिक आजीविका और आय विविधीकरण की तलाश में अन्य उद्योगों की ओर पलायन कर रहे हैं। कृषि–पर्यटन ग्रामीण पतन के 'होलोइंग आउट इफेक्ट' (Hollowing Out Effect) को दूर कर सकता है और कृषि एवं पारिस्थितिकी तंत्र आधारित सेवाओं में किसानों के भरोसे को पुनः बहाल कर सकता है।

किसानों को लाभ : कृषि–पर्यटन किसानों के आय समर्थन में मदद करता है। यह कृषि के प्रति किसानों के दृष्टिकोण या प्राथमिकताओं को बदलने के लिये एक प्रोत्साहक और एक अवरोधक दोनों के ही रूप में कार्य करता है। यह किसानों को उस भूमि का उपयोग करने के लिये प्रोत्साहित करता है जिसे परती या बंजर छोड़ दिया जाता है। इसके विपरीत, यह कृषि–पर्यटन में लगे किसान को उपलब्ध कृषि भूमि के एक हिस्से पर खेती करने से रोकता भी है और खेती के बजाय इसका उपयोग पर्यटन गतिविधियों के लिये करने हेतु प्रोत्साहित करता है।

समुदायों के लिये लाभ : सामुदायिक दृष्टिकोण से कृषि पर्यटन निम्नलिखित विषयों में एक साधन की तरह कार्य कर सकता है।

- पर्यटकों के माध्यम से स्थानीय व्यवसायों और सेवाओं के लिये अतिरिक्त राजस्व उत्पन्न करना।
- निवासियों और आगंतुकों के लिये सामुदायिक सुविधाओं का उन्नयन/पुनरुद्धार करना।
- पर्यटकों और निवासियों के लिये ग्रामीण भूदृश्य और प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा बढ़ाना।
- स्थानीय परंपराओं, कला और शिल्प को संरक्षित एवं पुनर्जीवित करने में मदद करना।
- अंतर–क्षेत्रीय, अंतर–सांस्कृतिक संचार और समझ को बढ़ावा देना।

पर्यटन संचालकों के लिये लाभ : पर्यटन उद्योग के दृष्टिकोण से कृषि पर्यटन निम्नलिखित रूप में योगदान कर सकता है।

- आगंतुकों के लिये उपलब्ध पर्यटन उत्पादों और सेवाओं के मिश्रण में विविधता लाना।
- आकर्षक ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पर्यटन प्रवाह की वृद्धि करना।
- परंपरागत रूप से ऑफ–पीक व्यावसायिक अवधि के दौरान पर्यटन मौसम का विस्तार करना।
- प्रमुख पर्यटन बाजारों में ग्रामीण क्षेत्रों की विशिष्ट स्थिति का निर्माण।
- स्थानीय व्यवसायों के लिये अधिकाधिक बाह्य मुद्राओं का प्रवेश।

अंतर्निहित चुनौतियाँ

- कृषि से संलग्न किसान कृषि गतिविधियों की अनदेखी कर सकते हैं यदि कृषि–पर्यटन की ओर उनका ध्यान बढ़ जाए और यह उनके लिये आय का अधिक आकर्षक स्रोत बन जाए। पर्यटक उन कृषि–पर्यटन केंद्रों का दौरा करना पसंद करते हैं जो आकार में बड़े हों और जहाँ कई मनोरंजक एवं अन्य गतिविधियों का अवसर हो।
- यह कृषि–पर्यटन के मूल उद्देश्य के विपरीत है जो छोटे एवं सीमांत किसानों के समर्थन का लक्ष्य रखता है। वे विभिन्न सुविधाओं और

बड़े आकार वाले कृषि–पर्यटन केंद्र की पेशकश कर सकने में अक्षम होते हैं।

- भाषाई चुनौतियों को पर्यटन क्षमता की वृद्धि में एक बाधा पाया गया है। पर्यटकों के साथ बातचीत कर सकने के लिये लोगों में हिंदी, अंग्रेजी या यहाँ तक कि स्थानीय बोली में भी उचित प्रवाह की कमी पाई जाती है।
- अपर्याप्त वित्तीय सहायता क्षेत्र की पर्यटन क्षमता को बाधित कर सकती है, जिससे लोगों को स्थानीय संस्कृति, परंपराओं, विरासत, कला–रूपों आदि को संरक्षित कर सकने में मदद मिलती।
- ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटन की पूरी अवधारणा ही बेहद देशी है। यद्यपि स्थानीय युवाओं द्वारा आरंभिक प्रयास किये गए हैं, फिर भी व्यावसायिकता की कमी है। पर्यटन के दृष्टिकोण से उपयुक्त तरीके से पेश कर सकने के लिये उनके पास उचित प्रशिक्षण का अभाव है।
- कुछ क्षेत्र कृषि–पर्यटन स्थल के रूप में विकसित होने की व्यापक संभावनाएँ रखते हैं। हालाँकि, व्यवसाय नियोजन कौशल की कमी इस राह एक और बड़ी बाधा है।

कृषि–पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये क्या किया जा सकता है ?

- **नीतिगत ध्यान:** कृषि–पर्यटन विकासशील देशों में अधिक नीतिगत ध्यान की आवश्यकता रखता है जहाँ अधिकांश आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। अनिश्चित नकदी प्रवाह, आवर्ती ऋण जाल और अप्रत्याशित जलवायु जैसी सतत प्रतिकूलताओं के साथ कृषि–पर्यटन को किसानों के लिये आय–सृजन गतिविधि के रूप में बढ़ावा दिया जा सकता है और इससे ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक प्रत्यास्थता को सुदृढ़ किया जा सकता है।

- **भूमि संबंधी मामलों को संबोधित करना:** कृषि–पर्यटन का समर्थन करने के लिये लघु/अपर्याप्त भूमि के मुद्दे को सरकार द्वारा संबोधित किया जाना महत्त्वपूर्ण है । पर्यटन बाजार की आवश्यकता पूर्ति का एक तरीका संकुल आधारित खेती या 'एक जिला एक फसल' सेवाओं के माध्यम से भूमि समेकन में निहित है।

- **राज्य एजेंसियों / निवेशकों की भूमिका:** कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र आधारित सेवाओं के लिये व्यावसायिक वातावरण को सक्षम करने हेतु राज्य एजेंसियाँ कृषि कार्यों पर किसानों की आर्थिक निर्भरता और कृषि–पर्यटन गतिविधियों की कथित लोकप्रियता के बीच एक भूमिका निभा सकती हैं। सामाजिक या प्रभाव निवेशक (Social or Impact Investors) व्यवसाय के चरण और कृषि–उद्यमियों द्वारा अपनाए गए व्यवसाय मॉडल के आधार पर कृषि–पर्यटन में निजी इक्विटी जुटा सकते हैं। ATDC भारत में कृषि–पर्यटन परिदृश्य की व्यावसायिक क्षमता का दोहन करने के लिये स्टार्ट–अप को आकर्षित कर सकता है और निवेशकों को प्रभावित कर सकता है।

- **कृषि–पर्यटन के लिये अनुसंधान एवं विकास :** कृषि–पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये ग्रामीण पर्यटन, पारिस्थितिकी–पर्यटन, स्वास्थ्य पर्यटन, साहसिक पर्यटन और खाद्य–संबंधी अभियान (Culinary Adventures) के साथ वैचारिक अभिसरण की आवश्यकता है। अनुसंधान किसी भी विषय में विकास के प्रमुख कारकों में से एक होता है क्योंकि यह छात्रों और इसके अभ्यास से संलग्न लोगों को उनकी रुचि के क्षेत्रों में शामिल होने और स्थानीय समुदायों के लाभ के लिये सभी संभावित समाधानों की खोज करने में मदद करता है।

किसान कृषि–पर्यटन को कैसे बढ़ावा दे सकते हैं ? :

कृषि–पर्यटन के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये किसानों को चाहिये कि :–

- अखबारों, टीवी आदि के माध्यम से अपने पर्यटन केन्द्र का व्यापक प्रचार–प्रसार करें तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों, गैर–सरकारी संगठनों, क्लबों, संघों, संगठनों आदि से संपर्क विकसित करें।
- कृषि–पर्यटकों के स्वागत और आतिथ्य के लिये अपने कर्मचारियों या परिवार के सदस्यों को प्रशिक्षित करें।
- ग्राहकों की मांगों और उनकी अपेक्षाओं को समझें और तदनुसार उनकी सेवा करें।
- वाणिज्यिक आधार पर सुविधाओं/सेवाओं के लिये इष्टतम किराया और शुल्क वसूलें।
- विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये एक वेबसाइट विकसित करें और समय–समय पर इसे अपडेट करें।
- सेवाओं के बारे में उनके फीडबैक लें और आगे के विकास एवं संशोधन हेतु उनसे सुझाव आमंत्रित करें।
- विभिन्न प्रकार के पर्यटकों और उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप विभिन्न कृषि–पर्यटन पैकेज का विकास करें।
- छोटे किसान सहकारी समिति के आधार पर अपने कृषि–पर्यटन केंद्रों का विकास कर सकते हैं।

❋❋❋

वर्तमान समय में छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली की उपयोगिता

गिरधारी लाल मीना एवं के. सी. मीना
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता–बारां

कृषि प्रधान भारत देश की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं कृषि योग्य भूमि की घटती हुई उपलब्धता आज एक गंभीर समस्या है। वहीं दूसरी ओर कृषि लागत में वृद्धि, फसलों पर कीटो व रोगों का प्रकोप, रासायनिक खाद व उवर्रकों से मनुष्य एवं मृदा स्वास्थ्य पर बुरा असर, फसल उत्पादन पर प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव एवं उत्पादित कृषि उपज का उचित दाम न मिल पाने की वजह से किसानों की आय प्रभावित हो रही है साथ ही कृषि से किसानों का मोह भंग हो रहा है। किसानी को लेकर एक आम धारणा बन गई है कि अब खेती में लाभ कम तथा खर्चा ज्यादा हो रहा है। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि समय के साथ खेती के तौर–तरीकों में बदलाव किया जाए भारत सरकार कृषि को लाभकारी बनाने के लिए प्रयासरत है यहीं कारण है कि कृषि की अलग–अलग कृषि प्रणालियों को अपनाने के लिए किसानों को बार–बार प्रोत्साहित किया जा रहा है सरकार की पूरी कोशिश है कि किसानों की लागत घटे और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा हो। इसी कड़ी में एकीकृत कृषि प्रणाली को विकसित किया गया है, जिसके जरिए किसान अपनी कमाई का मुनाफा बढ़ाकर सुखमय जीवन जी सकें। पारंपरिक खेती करने वाले किसान शुरुआत में नए मॉडल को अपनाने में हिचकिचाते हैं, लेकिन जैसे ही मुनाफा होने लगता है, तो उन्हें यह समझ आने लगती है। बड़ी संख्या में किसान अब एकीकृत कृषि प्रणाली की तरफ रुख कर रहे हैं. इस प्रणाली से उन्हें अच्छी कमाई भी हो रही है। इस प्रणाली के तहत कृषि करने के लिए शुरूआत में बार ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन बाद में आपका काम काफी आसान हो जाता है, इसलिए एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाना वर्तमान समय की मांग है। एकीकृत कृषि प्रणाली विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए है। बड़े किसान भी इस प्रणाली के जरिए खेती कर मुनाफा कमा सकते हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली

एकीकृत कृषि प्रणाली का तात्पर्य कृषि की उस प्रणाली से है जिसमें दो या इससे अधिक उद्यमों का एकीकरण किया जाता है। जो आपस में एक दूसरे पर निर्भर रहते है। इसमें किसान की अधिकतम जरूरतों को पूरा करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जाता है। एकीकृत कृषि प्रणाली मे कृषि के विभिन्न घटकों जैसे फसल उत्पादन, मवेशी/भैंस/बकरी पालन, फल, फूल, तथा सब्जी उत्पादन, मधुमक्खी पालन, मछली पालन, सूकरपालन, बत्तख और मुर्गी पालन, वानिकी इत्यादि को एक निश्चित अनुपात में इस प्रकार शामिल किया जाता हैं, कि एक घटक या एक इकाई से बचे हुए या निकलने वाले अपशिष्टों व उप–उत्पादों को दूसरे घटकों या इकाईयों में कच्चे माल के रूप में उपयोग किए जा सकें। इस प्रकार ये सभी घटक आपस में मिल कर कृषि लागत में कमी लाते है, और किसानों की आमदनी एवं रोजगार में बढ़ोतरी करते है। विपरीत परिस्थतियों की वजह से अगर प्रणाली के एक घटक में होने वाले के नुकसान की भरपाई दूसरे अन्य घटकों से हो जाती है। खेती के इस मॉडल से किसानों को सालभर आमदनी मिलती है। उदाहरण के रूप में अगर आप मुर्गीपालन करते हैं तो मुर्गीयों के अपशिष्टों (बीट) को मछलियों के आहार के रूप में या फसल उत्पादन में खाद के रूप में उपयोग कर सकते हैं। फसल उत्पादन के विभिन्न उत्पादों जैसे मक्का, बाजरा आदि को मुर्गीयों के आहार के रूप में उपयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार फसल अवशेष (भूसे) को मुर्गीपालन में मुर्गियों के बिछावन के रूप में उपयोग कर सकते हैं। पशुपालन के गोबर का इस्तेमाल फसल उत्पादन में खाद के उपयोग कर सकते हैं। इसके अलावा गोमूत्र और नीम के अर्क को खेत में कीटनाशक के रूप में छिड़का जा सकता है। चावल के भूसे का उपयोग पशुपालन में चारे के रूप में व मशरूम की खेती में इस्तेमाल किया जा सकता है। तालाब में जलकुंभी का उपयोग वर्मीकम्पोस्ट में बेडिंग सामग्री के रूप में किया जा सकता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के लाभ

इस प्रणाली से खेती करने पर किसानों को कई तरह के लाभ होते हैं

1. **उत्पादकता में वृद्धि :** पशुओं और फसलों से प्राप्त अवशेष को खाद में बदलकर मिट्टी को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के साथ–साथ बहुत से सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है, जिससे मिट्टी में सुधार होने के साथ साथ मिट्टी की उत्पादन क्षमता बढ़ती है। अपशिष्ट पदार्थो के फिर से इस्तेमाल करने से उर्वरकों का उपयोग कम किया जा सकता है, जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार के साथ साथ पर्यावरण में सकारात्मक असर पड़ता है। एकीकृत कृषि प्रणाली फसल और संबद्ध उद्यमों की गहनता के आधार पर प्रति इकाई क्षेत्र प्रति इकाई समय में आर्थिक उपज बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है।

2. **कृषि कार्यों में कम लागत द्वारा किसानों को अधिक लाभ :** एकीकृत कृषि प्रणाली खेती के एक घटक के बचे अपशिष्ट पदार्थों को दूसरे घटकों के उपयोग में लाने का समग्र अवसर प्रदान करती है। जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है। अपशिष्ट पदार्थो के पुनर्चक्रण से आदानों के लिये बाजार पर निर्भरता काफी हद तक कम हो जाती है। अधिकांश आदानों में बिचौलियों का हस्तक्षेप समाप्त हो जाता है। जिससे निवेश किए जाने वाले प्रत्येक रुपए से काफी अधिक मुनाफा (शुद्ध लाभ) मिलता है।

3. **रोजगार के अधिक अवसर :** खेती के साथ अन्य गतिविधियों (गोबर खाद, केंचुआ खाद, सब्जी, फल, पुष्प, शहद, अंडा बिक्री, दूध बिक्री, आदि) को अपनाने से मजदूरी की माँग उत्पन्न होती है जिससे वर्ष भर परिवार के सदस्यों को रोजगार का पर्याप्त अवसर मिलता है और उन्हें खाली नहीं बैठे रहना पड़ता। पुष्प उत्पादन, मधुमक्खी पालन और प्रसंस्करण से भी परिवार को अतिरिक्त रोजगार प्राप्त होता है। छोटे एवं सीमांत किसान इस प्रणाली के द्वारा अपनी भूमि पर सालभर रोजगार प्राप्त कर सकते है।

4. **संतुलित भोजन :** हम इस कृषि प्रणाली में विभिन्न प्रकृति के घटकों से पोषण के विभिन्न स्रोतों का उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। बाजार से प्राप्त मिलावटी खाद्य पदार्थ से भी कुछ हद तक निर्भरता घट जाती है तथा भोजन और पौष्टिक आहार की घरेलू आवश्यकता पूरी की जा सकती है। समन्वित कृषि दृष्टिकोण अपनाने से छोटे और सीमान्त किसानों की आजीविका में महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ है।

5. **साल भर आय :** समन्वित कृषि प्रणाली के अंतर्गत कृषि के विभिन्न उद्यमों जैसे कि फसलों, सब्जी, फल, पुष्प, अंडे, दूध, मशरूम, शहद इत्यादि से किसानों को रोजाना आमदनी प्राप्त होती है। जिससे वह अपनी रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति कर सकता है।

6. **चारा संकट से निपटना :** भूमि क्षेत्र के हर टुकड़े का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है। खेत की सीमाओं पर बारहमासी फलीदार चारे के पेड़ लगाना और वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भी स्थिर करना। पशुओं को गुणवत्ता वाले चारे की अनुपलब्धता की समस्या से काफी राहत मिलती हैं।

7. **कृषि आदानों में आत्मनिर्भरता :** कृषि आदान में आत्मनिर्भरता लाने के लिए इन घटकों का चुनाव किया गया है। अपने खेतों के लिये बीजों का अधिक–से–अधिक उत्पादन करना, अपने खेतों के लिये कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवॉश, जीवमृत, जीवाघन, तरल खाद, वनस्पतियों का रस, आदि तैयार करना।

8. **पुनर्चक्रण द्वारा मिट्टी की उर्वरक क्षमता में वृद्धि :** अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण कृषि प्रणालियों का अभिन्न अंग है। यह खेती से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों के निपटान का सबसे उपयोगी तरीका है। इससे पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के साथ–साथ बहुत से सूक्ष्म पोषक तत्वो का भी खेतों में ही पुनर्चक्रण के माध्यम से उपयोग किये जा सकते हैं।

9. **सीमित संसाधनों का पूर्ण उपयोग:** एकीकृत कृषि प्रणाली की उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने के लिये भूमि और जल जैसे संसाधनों का विवेकपूर्ण व विविधतापूर्ण उपयोग बेहद जरूरी है। वर्षा जल को जल संग्रहण संरचना बनाकर एकत्रित किया जा सकता है व इस जल का उपयोग पशुओं, फसलों, फल वृक्षों और सब्जी उत्पादन में किया जा सकता है। इन्हीं जल संरचना में मछली पालन या बत्तख पालन भी किया जा सकता है। जिससे छोटे काश्तकारों की आमदनी बढ़ाने, उनके पौष्टिक आहार के स्तर में सुधार और रोजगार के अवसर बढ़ाने में मदद मिल सकती है।

10. **जोखिमों में कमी :** एकीकृत कृषि प्रणाली अपनाने से खेती की जोखिमों में कमी, खासतौर पर बाजार में मंदी और प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न खतरों से बचाव में भी मदद मिलती है। इस प्रणाली को अपनाने का एक बड़ा फायदा यह है कि यदि किसी वजह से (मौसम से फसल बर्बाद या पशु मृत्यु) एक उद्यम से आय नहीं होती है तो दूसरे उद्यम से गुजारा चलाया जा सकता है यानि पशु पालन, मुर्गी पालन, या अन्य पालन से भी आमदनी आ जाती है। किसान एकीकृत कृषि प्रणाली में निम्न घटकों को उद्यमों में शामिल कर सकते है।

तालिका : 1 एकीकृत कृषि प्रणाली के संभावित उद्यम एवं घटक

उद्यम	घटक
अनाज की फसलें	मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूं, क्विनोआ
दलहन की फसलें	मूंग, उड़द, लोबिया, चना
तिलहन की फसलें	सरसों, तारामीरा, तिल, सोयाबीन, अलसी, सोयाबीन
वाणिज्यिक फसलें	कपास और अरंडी
सब्जियों की फसलें	टमाटर, बैंगन, मिर्च, कलस्टरबीन, भिंडी, खीरा, लौकी, पालक और मेथी
फलों की फसलें	आंवला, संतरा, अमरूद,,बेर, आम, पपीता, सीताफल, नींबू, अनार, ड्रैगन फ्रूट, चीकू, स्ट्रश्वबेरी
फूलों की फसलें	गुलाब, गैंदा
जड़ो वाली फसलें	अदरक, हल्दी, रतालू, गाजर, चुकंदर, शकरकंद, मूली, प्याज, लहसुन
चारा फसलें	बरसीम, रिजका
मसालें	अजवायन, सूआ, सौंफ, मेथी, धनिया
लघु वन उत्पाद	महुवा, पुवाड़, बांस
जैविक उत्पाद	वर्मी कम्पोस्टिंग और वर्मिन–वश्वश
छोटे पैमाने पर प्रसंस्करण	सीताफल,, अरहर, आम, ड्रैगन फ्रूट
औषधीय फसलें	अफीम, तुलसी, इसबगोल, कालमेघ, कलिहारी, अशगंधा, सफेद मूसली, एलोवेरा, शतावरी
पशु	गाय, भैंस, बकरी, सुअर, निर्भीक और प्रतापधन मुर्गी, बत्तख
अन्य	तुलसी, मछली, मशरूम, मधुमक्खी पालन

तालिका : 2 दक्षिणी राजस्थान में एमपीयूएटी द्वारा विकसित अनुशंसित एकीकृत कृषि प्रणालिया

कृषक समूह	एकीकृत कृषि प्रणाली
भूमिहीन	बकरी इकाई (उन्नत सिरोही नस्ल की 6–8 बकरियां) + पिछवाड़े में कुक्कुट इकाई
सीमांत किसान (सिंचित)	**मॉडल 1 :** फसल उत्पादन (0.8 हेक्टेयर) + सब्जी उत्पादन (0.2 हेक्टेयर) + पपीता के पौधे इंटरक्रॉप/फार्म सीमा के रूप में + बकरी इकाई (6–8 उन्नत सिरोही नस्ल की बकरियां) + पिछवाड़े में कुक्कुट इकाई
	मॉडल 2 : फसल उत्पादन (0.8 हेक्टेयर) + सब्जी उत्पादन (0.2 हेक्टेयर) + पपीता के पौधे इंटरक्रॉप/फार्म सीमा के रूप में + बकरी इकाई (6–8 उन्नत सिरोही नस्ल की बकरियां) + पिछवाड़े में कुक्कुट इकाई
सीमांत किसान (वर्षा सिंचित)	फसल उत्पादन (1.0 हेक्टेयर) + बकरी इकाई (6–8 उन्नत सिरोही नस्ल की बकरियां) + पिछवाड़े में कुक्कुट इकाई
छोटे किसान (सिंचित)	फसल उत्पादन (1.2 हेक्टेयर) + सब्जी उत्पादन (0.2 हेक्टेयर) + पपीता के पौधे इंटरक्रॉप/फार्म सीमा के रूप में + 2 भैंस

एकीकृत कृषि प्रणाली अपनाना क्यो है जरूरी

वर्ष की एक ऋतु में एक ही फसल उगाने का अब गया जमाना।
एकीकृत कृषि प्रणाली को छोटे और सीमांत किसानों को है अपनाना।
हर किसान की उम्मीद हो, हो हर किसान का अपना सपना।
वर्तमान परिपेक्ष्य में एकीकृत प्रणाली को ही माना है सबने अपना।

फसल के साथ डेयरी, कम्पोस्ट, वर्मीवॉश, वर्मीकम्पोस्ट और तरल खाद है अपनाना।
मंहगी व पर्यावरण की दुश्मन रासायनिक खाद की लागत को है घटाना।
गोबर गैस के उपयोग से घरेलू इंधन समस्या को है सुलझाना।
संतुलित जैविक सीमित संसाधनों के निरन्तर प्रवाह से पर्यावरण को है बचाना।

चारा संकट से बचने के लिए वानिकी के साथ चारा फसल है उगानी।
खेत के साथ–साथ एक हिस्से में पशुपालन करके जमीन है बचानी।
किचन गार्डनिंग में सब्जी उत्पादन से मिलेगी ताजी ताजी सब्जी।
होगा भरपूर पारिवारिक पौष्टिक पोषण, न होगी हारी–बीमारी।

बागवानी, वानिकी, मधुमक्खी पालन से मिलेंगे फल, वन–उपज और शहद।
प्रणाली के उद्यमों से वर्षभर आमदनी और रोजगार की उपलब्धि होगी बेहद।
बकरी, मधुमक्खी और मछलीपालन से होगी अतिरिक्त इनकम।
परिपूरक उद्यमों के उचित समन्वय से होगी लागत कम।

प्रणाली का मुख्य उदेश्य है पौष्टिक आहार की आवश्यकता की पूर्ति करना।
अपशिष्टों के पुनर्चक्रण से आदानों की बाजार पर निर्भरता खत्म करना।
भारत की कृषि खतरे में है, सारे बिखरे किसानों को है बचाना।
किसानों को एकजुट है करना, भारत की कृषि को है बचाना।

किसान शुरुआत में एकीकृत प्रणाली के नए मॉडल को अपनाने में हैं कतराता ।
लेकिन जैसे ही पड़ोसी किसानों को मुनाफा होने लगता है, उन्हें यह समझ आने लगता।

इस प्रणाली में पहली बार किसानों को करनी पड़ती है, मेहनत ज्यादा।
लेकिन बाद में आपको होती है आमदनी ज्यादा।
इसलिए एकीकृत कृषि प्रणाली को है अपनाना।
एकीकृत कृषि प्रणाली को है अपनाना।

फसलों में बोरॉन की आवश्यकता एवं महत्व

विनोद कुमार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव एवं राकेश कुमार यादव
कृषि विश्वविद्यालय कोटा

पौधों की सामान्य वृद्धि और उनके विकास हेतु सत्रह पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जिनका उपयोग पौधे अधिक मात्रा में करते हैं, ये प्रमुख या प्राथमिक पोषक तत्व कहे जाते हैं। कुछ तत्वों की अपेक्षाकृत कम मात्रा ही पर्याप्त विकास के लिए आवश्यकता पड़ती है, इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। बोरॉन एक सूक्ष्म पोषक तत्व है। यह पौधों के द्वारा बहुत ही कम मात्रा में (अर्थात 0.01 से 1.0 पीपीएम) लिया जाता है। इस तत्व की अधिक मात्रा होने की दशा में पौधों पर जहरीला प्रभाव पड़ता है। ऊसर मिट्टियों में जब क्षार तथा लवण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं तो फसल की उपज बहुत कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त बहुधा ऐसी मिट्टी में अथवा सिंचाई के जल में या दोनों में ही बोरॉन की अधिक मात्रा में उपस्थिति के कारण फसल की उपज और भी कम हो जाती है।

अधिकांश मृदाओं में बोरॉन का मुख्य स्रोत टार्मेलिन खनिज है, जिसमें 3–4 प्रतिशत बोरॉन पाया जाता हैं। यह अपक्षयण–प्रतिरोधी खनिज है, अतः इससे बोरॉन मन्द गति से मुक्त हो पाता हैं। बोरॉन की कमी की बढ़ती हुई समस्या से यह संकेत मिलता है कि सघन–कृषि प्रणाली में पौधों की आवश्यकता के अनुरूप बोरॉन की पूर्ति करने में यह खनिज सक्षम नहीं हैं। पौधों के लिए सुलभ बोरॉन की अधिकांश मात्रा मृदा–जैवांश के विघटन से प्राप्त होता हैं। कुछ मृदा–कणों की सतह पर अधिशोशित एवं अवक्षिप्त अंश से भी बोरॉन सुलभ हो जाता हैं। बारीक गठन वाली मृदाओं में हल्के गठन वाली बलुई मृदाओं की तुलना में उपलब्ध बोरॉन की मात्रा अधिक पायी जाती है। बहुधा आर्द्र क्षेत्रों की मृदाओं में बोरॉन की हानि नीक्षालन द्वारा हो जाती है, जिससे उपलब्ध बोरॉन की मात्रा में कमी हो जाती हैं। शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों वाली लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में जहां नीक्षालन सीमित होता है, वहां बोरॉन की विशालुता एक आम समस्या है। मिट्टी में उपलब्ध कैल्शियम की मात्रा अधिक होने की दशा में पौधे बोरॉन की अधिक मात्रा को भी सहन कर सकते हैं।

मिट्टी में बोरॉन की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मिट्टी में बोरॉन की उपलब्धता पी–एच मान, गठन, क्ले का प्रकार, कैल्शियम कार्बोनेट, जैविक पदार्थो की मात्रा, स्थलाकृति, सिंचाई के तरीके, जल–निकास और सिंचाई जल में इसकी सान्द्रता पर निर्भर करती है। बोरॉन के विभिन्न रूपों का आपसी संतुलन पौधों की वृद्धि का नियंत्रण करता है। अनुसंधान द्वारा पता चला है कि सामान्य तथा उच्च पी–एच मान वाली मृदाओं में जल में घुलनशील बोरॉन की अधिकता होती है। इसी प्रकार सिल्ट और बालू की अपेक्षा क्ले के कण बोरॉन के लिए अधिक ग्राही होते हैं। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में रहने से बोरॉन की प्राप्यता बढ़ती है, किन्तु अधिक सूखे और पानी वाले क्षेत्रों में ;णात्मक संबंध हो जाता है। बोरॉन का स्थिरीकरण भूमि के विन्यास पर भी निर्भर करता है। प्रायः सूक्ष्म विन्यास वाली भूमि में बोरॉन का स्थिरीकरण ज्यादा होता है, परन्तु मोटे कणों वाली भूमि में बोरॉन की प्राप्यता ज्यादा होती है। फल और सब्जियों वाली फसलों की बोरॉन आवश्यकता अधिक होती है अतः ये बोरॉन के प्रयोग से ज्यादा लाभान्वित होती हैं।

पौधों के पोशण में बोरॉन का महत्व

बोरॉन अनेक एंजाइमों जैसे कैटालेज, ऑक्सीडेज, पराक्सीडेज और सुक्रेज की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन में भी बोरॉन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। पत्तियों में शर्करा स्थानांतरित करने में बोरॉन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जल–अवशोषण, उत्स्वेदन और ऋणायनों का अवशोषण भी बोरॉन द्वारा नियंत्रित होता है। यह प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फॉस्फेट के उपयोग और कोशिका भित्ति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है। बोरॉन पौधों में पोटेशियम–कैल्शियम अनुपात को नियमितता प्रदान करता है। प्रोटीन–संश्लेशण, कोशिकाओं की वृद्धि, दलहनी फसलों की जड़ों में गांठों के बनने, श्वसन–किया, शर्करा–स्टार्च साम्य नियंत्रण और पेक्टिन संश्लेषण में सहायक होता है। यह पौधों में विभिन्न तत्वों के वाहक का कार्य करता है। बोरॉन कार्बोहाइड्रेट को पादप कोशिका में संग्रहित करने का कार्य करता है, अतः यह प्रकाश–संश्लेषण और पौधों की वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लोहे के समुचित उपयोग में भी सहायता करता है।

बोरॉन की कमी प्रायः फिनोलिक अम्ल के अधिक संश्लेषण के बाद ही देखी जाती है। बोरॉन की कमी हो जाने पर टमाटर की पत्तियों में शर्करा और तम्बाकू की पत्तियों में निकोटिन का संचयन अधिक होता है। बोरॉन के अभाव में पौधों में कौफीन क्लारोजनिक अम्ल का भी संचयन होता है। परागकण और पराग नली की वृद्धि पर भयंकर कुप्रभाव पड़ता है।

तालिका : 1 फसलों की बोरॉन संवेदनशीलता का तुलनात्मक विवरण।

अत्यधिक संवेदनशील फसलें	मध्यम संवेदनशील फसलें	कम संवेदनशील फसलें
चुकंदर, लूसर्न या रिजका, सेलेरी, शकरकंद, शलजम, फूलगोभी, पत्तागोभी, सेब और नाशपाती, गुलाब वर्ग और सूरजमुखी	पत्तागोभी, तम्बाकू, गाजर, टमाटर, कपास, मक्का, सलाद, मूली, पालक, आडू वर्ग, अंगूर वर्ग, उड़द, चना, सरसों और प्याज	सेम वर्गीय, जौ, जई, मटर वर्गीय, सोयाबीन वर्गीय, आलू, ज्वार, धान, गेहूं, और नींबू वर्गीय

तालिका : 2 बोरॉन–धारी उर्वरक

बोरॉन धारी उर्वरक	बोरॉन की प्रतिशत मात्रा
बोरेक्स	11
सोडियम टेट्राबोरेट (उर्वरक बोरेट)	14
सोडियम टेट्राबोरेट/निर्जल (उर्वरक बोरेट)	20
सेलुबर	20
बोरिक अम्ल	17
कोलेमेनाइट	10
बोरॉन फिट्स	2–6
बहुपोषक तत्व मिश्रण	विभिन्न

फसलों में बोरॉन की कमी के लक्षण

बोरॉन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं। बोरॉन की कमी से पौधों के वर्धनशील अग्रभाग के ऊतक मर जाते हैं। पत्तियां मोटी हो जाती हैं, जो कभी–कभी मुड़ जाती हैं, और काफी सख्त हो जाती हैं। मुख्य तने की फुनगी मर जाने के कारण फूल और फल नहीं लग पाते। जड़ों का विकास रूक जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन भी आ जाता हैं, झुर्रियां पड़ जाती है और हरिमाहीन धब्बे दिखाई देने लगते हैं। बोरॉन की अधिक कमी होने पर पत्तियां सूख जाती है। जड़ वाली फसलों में 'ब्राउन हार्ट' नामक बीमारी हो जाती है, जिसमें जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते हैं, कभी–कभी जड़ें बीच से फट भी जाती हैं।

सब्जी वाली फसलों में बोरॉन की कमी की पहचान

विभिन्न फसलों में बोरॉन की कमी होने की स्थिति में पौधों की वृद्धि रूक जाती है और शीर्षस्थ प्ररोहों में अतिरिक्त एवं असामान्य वृद्धि हो जाती है। पत्तियों के अग्रभाग और किनारे पूर्णता के पहले ही मर जाते हैं और कन्द का आकार असामान्य और छोटा होता है।

मूली : मूली में बोरॉन की कमी होने से प्रारंभिक अवस्था में पत्तियां नीली–हरी हो जाती हैं। पत्तियां सतह पर सिकुड़ने लगती हैं और असामान्य तरीके के बढ़ती हैं। पहले नवजात, बाद में सभी पत्तियों का ऊपरी भाग 'हुक' की तरह दिखाई देता है। जड़ में दरारें पड़ जाती हैं और वृद्धि रूक जाती है। परागण की क्रिया भी सुचारू रूप से नहीं होती हैं।

फूलगोभी : बोरॉन की कमी होने पर फूलगोभी की उपज करीब 25 से 35 प्रतिशत होती है। फूलगोभी का सफेद रंग बादामी रंग का हो जाता है। पहले तने और फूल के मध्य में पानी जैसा चिपचिपा रंग में बदल जाता है। पहले तने और फूल के मध्य में पानी जैसा चिपचिपा हो जाता है, यही बाद में भूरे चित्तिदार रंग में बदल जाता है। तना खोखला हो जाता है। पत्तियों में सिकुड़न, पर्ण सतह का खुरदरा होना और पत्तियों का छोटा होना, इसकी कमी के लक्षण हैं।

टमाटर : टमाटर की पत्तियों के शीर्ष पीले होने लगते हैं तथा शिराएं गुलाबी–नारंगी रंग की हो जाती हैं। फल धब्बेदार और कड़ा हो जाता है। फल समय से पहले ही पकने लगते हैं, जिससे फलों की स्वस्थता व गुण भी खराब हो जाते हैं। इस तत्व की कमी से फल के कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम हो जाती हैं।

मटर : बोरॉन की कमी से दलहनी फसलों में शिखर कलिकाओं की वृद्धि रूक जाती है। मटर की जड़े छोटी और मोटी हो जाती हैं और उनके सिरे लम्बे होते हैं। गौण जड़ों का विकास कम होता हैं। खेती में सूखे मौसम से भी बोरॉन की कमी बढ़ती हुई पायी गयी है। यह मिट्टी में बोरॉन के यौगिकीकरण के कारण होता हैं।

आंतरिक गलन (हार्ट रॉट) : शीर्ष गलन या शुष्क गलन के नाम से जाना जाने वाला रोग चुकंदर और मैगोल्ड में विशेष रूप से देखा जाता है। आंतरिक जड़ों के ऊतक मर जाते हैं तथा नई पत्तियां बुरी तरह मुड़ जाती हैं। शिराएं पीली पड़ जाती हैं और पर्णवृन्त कड़े हो जाते हैं। शाखाओं के वर्धनशील अग्र भाग मरने लगते हैं।

फूल गोभी का भूरा रोग : शीर्ष पर भूरे चकत्ते पड़ना, पत्तियों का मोटा तथा कड़ा हो जाना, नीचे की ओर मुड़ जाना, मध्य शिरा के किनारे–किनारे एवं पर्णवृन्त पर फफोले पड़ जाना इस रोग के लक्षण हैं।

विदलित तना : सिलेरी में होने वाले रोग को विदलीत तना के नाम से जाना जाता है।

विशालुता : बोरॉन की विशालुता होने पर हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। सिंचाई जल में बोरॉन की प्रचुर मात्रा होने के कारण ऐसे जल द्वारा सिंचित फसलों में विशालुता उत्पन्न होने की आशंका रहती है।

फसलों की बोरॉन संवेदनशीलता

चुकंदर बोरॉन की कमी के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील है। इसके अलावा सरसों कुल की फसलों जैसे शलजम, फूलगोभी और पत्तागोभी में बोरॉन आवश्यकता अधिक होती है। फल वृक्षों में सेब और नाशपाती बोरॉन की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील हैं। कुछ दलहनी फसलें बोरॉन के लाभ से विशेष लाभान्वित होती हैं। बोरॉन के प्रयोग से लूसर्न की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। साधारणतया द्विबीजीय फसलों की बोरॉन आवश्यकता एक बीज पत्री फसलों की तुलना में अधिक होती हैं। इसलिए अनाज वाली फसलें बोरॉन की कमी के प्रति कम संवेदनशील होती हैं। विभिन्न फसलों में तिलहनी फसलों की बोरॉन मांग सर्वाधिक है, इसके बाद दलहनी और फिर कंद वाली फसलें क्रमानुसार आती हैं। तिलहनों में सरसों की फसल बोरॉन का अवशोषण सबसे अधिक और मूंगफली सबसे कम करती है। इसी प्रकार कंदों में शकरकंद की बोरॉन–मांग सबसे अधिक और आलू की सबसे कम है। वही फसल (मक्का एवं प्याज) जब गर्म मौसम (खरीफ) में उगायी जाती है तो ठंडे मौसम (रबी) में उगाये जाने की अपेक्षा अधिक बोरॉन चाहती है। बोरॉन की मांग में अन्तर अन्तराफसल एवं अंतः फसल दोनों के भिन्न स्वभाव के कारण भी होता हैं। अन्तरा–प्रजाती अन्तर अन्य फसलों की तुलना में तिल में सबसे अधिक देखा गया। दलहनों में चना एवं मसूर की तुलना में अरहर की बोरॉन–मांग अधिक थी और यह मक्के की बोरॉन–मांग के समान है।

बोरॉन का फसल गुणवत्ता पर प्रभाव

फसल की उपज और उसकी गुणवत्ता दोनों ही बोरॉन से प्रभावित होती हैं। तिलहनी फसलों में बोरॉन के प्रयोग से तेल की मात्रा में वृद्धि होती है। बोरॉन के प्रयोग से दानों में प्रोटीन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। बोरेक्स डालने पर आलू की उपज तथा उनमें स्टार्च की मात्रा में वृद्धि होती है।

बोरॉन के अभाव को दूर करने के उपाय

यदि मिट्टी–परीक्षण द्वारा अथवा पौधों को देखने से बोरॉन की कमी के लक्षण प्रतीत हों तो फसल की आवश्यकतानुसार 5–20 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। यह मात्रा मिट्टी और फसल की विभिन्नता के अनुसार कम या अधिक हो सकती है। सब्जियों की फसलों में बोरॉन या तो मिट्टी में मिलाकर या पर्णीय छिड़काव श्रेष्ठ रहता है। पर्णीय छिड़काव से बोरॉन की आपूर्ति शीघ्र होती है। पर्णीय छिड़काव हेतु 0.2 प्रतिशत बोरेक्स या बोरिक अम्ल का छिड़काव करना उत्तम रहता है। यदि मिट्टी अथवा सिंचाई के जल में बोरॉन की अधिकता हो तो तालिका–1 में बताई गई सहनशील फसलें बोयें तथा नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग अधिक मात्रा में न करें। ऐसे स्थानों पर गेहूं की देशी किस्में बोना ज्यादा लाभदायक होगा। यदि हो सके तो ऐसे बोरॉनयुक्त जल कल्ले फूटने की अवस्था पर न करें।

बोरॉन–धारी उर्वरक

बोरॉन की कमी दूर करने और फसलोत्पादन में वृद्धि के लिए 0.5 और 1.0 कि.ग्रा. बोरॉन प्रति हैक्टर सोडियम बोरेट, बोरेक्स, उर्वरक बोरेट (जलयुक्त एवं निर्जल) अथवा सोलुबर के रूप में दिया जाता है। बोरिक अम्ल सामान्यतः पर्णीय छिड़काव के लिए प्रयोग किया जाता है। ये पदार्थ अत्यन्त विलेय हैं और इनका अधिकाधिक प्रयोग विशैला सिद्ध हो सकता है। खासकर बीजांकुर के समय देने पर बोरॉन की प्रयुक्त मात्रा संस्तुत खुराक से अधिक नहीं होनी चाहिए। तालिका–2 में दिये गये किसी भी बोरॉन–धारी उर्वरक के प्रयोग से बोरॉन की कमी दूर की जा सकती है।

बोरॉन प्रयोग की विधि

मृदा में बोरॉन की कमी होने पर ही इसका प्रयोग करना चाहिए। गलन प्रयोग से पौधों में विशालुता उत्पन्न हो सकती है। मृदा में 20 कि.ग्रा./हैक्टर, की दर से बोरेक्स के 0.2 प्रतिशत घोल से पर्णीय छिड़काव. चूना–दो बार और बुआई के पूर्व कन्द को 0.05 प्रतिशत इसके घोल में 3 घंटे के लिए डुबोने के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। ऐसा देखा गया कि बोरॉन का प्रयोग चाहे जिस विधि से किया जाये। इससे कन्द की उपज, बोरॉन अवशोषण एवं स्टार्च की मात्रा में सार्थक वृद्धि होती है। सामान्य दशाओं में भी बोरॉन देने से फसलों की वृद्धि और उत्पादन में आशातीत वृद्धि होती है। मिट्टी में बोरॉन की पर्याप्त उपलब्ध मात्रा होने या बीजों का बोरॉन से शोधन करने पर टमाटर, मिर्च और पत्तागोभी में गलन की बीमारी नहीं लगती है। इसी तरह इसकी पर्याप्त मात्रा का उपयोग करने पर अगूंर और सेम को पाले से बचाता है। अतः समुचित मात्रा में इसके उपयोग से कोशिकाओं में अन्य पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है, जिससे पाला जैसी आपदाओं से बचा जा सकता हैं।

शून्य जुताई-संसाधन संरक्षण की एक नई तकनीक

पिंकी यादव, एस. के. शर्मा एवं सुरेश कुमार जाट
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

परंपरागत रूप से खेती की तैयारी में अधिक जुताई करने में ज्यादा समय, श्रम और धन अधिक लगता है। दिनों दिन महंगी होती खेती के कारण किसानों का मोह भंग होने लगा है। जीरो टिलेज पारंपरिक खेती से अलग कृषि की एक नई विद्या है, जिसमें खेत की जुताई के बिना बुवाई की जा सकती है। इसके फायदों को देखते हुए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा भी इसमें इस्तेमाल होने वाले यन्त्र (सीड ड्रिल) पर किसानों को 50 फीसदी रियायत (सब्सिडी) दी जा रही है, ताकि इस विधि को बढ़ावा मिल सके। गौरतलब है कि धान की कटाई के बाद किसानों को रबी की फसल गेहूँ आदि के लिए खेत तैयार करने पड़ते है।

गेहूँ के लिए किसानों को अमूमन 5–7 जुताईयां करनी पड़ती है। ज्यादा जुताईयों की वजह से किसान समय पर गेहूँ की बीजाई नही कर पाते, जिसका सीधा असर गेहूँ के उत्पादन पर पड़ता है। शून्य जुताई से किसानों का वक्त तो बचता ही है, साथ ही लागत भी कम आती है, जिससे किसानों का मुनाफा काफी बढ़ जाता है। जीरो टिलेज के जरिये खेत की जुताई और बीजाई दोनो ही काम एक साथ हो जाते है। इस विधि से बुवाई में प्रति हेक्टेयर किसानों को करीब 2000–2500 रूपये की बचत होती है। बीज भी कम लगता है, और पैदावार करीब 15 फीसदी बढ़ जाती है। खेत की तैयारी में लगने वाले श्रम व सिंचाई के रूप में करीब 15 फीसदी बचत होती है। इसके अलावा खरपतवार भी ज्यादा नहीं होता, जिससे खरपतवार नाशकों का खर्च भी कम हो जाता है। समय से बुवाई होने से पैदावार भी अच्छी होती है। किसान अगेती फसल की बुआई भी कर सकते है। यही नहीं जीरो टिलेज विधि से न केवल गेहूँ बल्कि धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, चना, मटर आदि फसलों की बुआई भी की जा सकती है। देश के उत्तरी राज्यों में किसान शून्य जुताई को अपना रहे है। धान–गेहूँ फसल की नई–नई मशीनों के उद्भावन एवं उनके प्रयोग से फसल उत्पादन में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है। इन नई मशीनों में जीररो टिल–ड्रिल, स्ट्रीपजीरोटिल–ड्रिल, चाइनीज ड्रिल एवं प्लान्टर इत्यादि है।

जीरो टिल, फर्टी सीड ड्रिल मशीन में लगे कुंड बनाने वाले फरो–ओपनर पतले धातु की मजबूत शीट से बने होते है, जो जुते खेत में एक कुंड बनाते है। इसी कुंड में खाद और बीज एक साथ गिरता जाता है। यह सीड ड्रिल 9 और 11 फरो–ओपनर आकार में उपलब्ध है। इसमें फरो–ओपनर इय तरह लगाये गये हे कि उनके बीच की दूरी को कम या ज्यादा किया जा सकता है। यह मशीन गेहूँ ओर धान के अलावा दलहन फसलों के लिये भी बेहद उपयोगी है। इसमें दो घंटे में एक हेक्टेयर क्षेत्र में बुआई की जा सकती है। इस मशीन को 35 हॉर्स पॉवर शक्ति के ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है।

शून्य जुताई तकनीक

इस तकनीक के अन्तर्गत गेहूँ की कटाई के बाद खेत की जुताई किये बिना, जीरोटिल–ड्रील द्वारा धान की सीधी बुआई की जाती है। इस मशीन में 9 या 11 फाल लगे होते है, जो ट्रैक्टर के साथ जोड़ने के बाद पतली लाईन चीरते है, जिससे उर्वरक और बीज अलग–अलग गिरते है।

अन्य क्रियाएं

प्रभेदों का चुनाव: मध्यम एवं लम्बी अवधि वाली धान की किस्मों का उपयोग किया जा सकता है जिसमें नाटा मसूरी एवं सीता का उपयोग कर अच्छी उपज की प्राप्ति कि जा सकती है।

खेत की तैयारी: गेहूँ की कटाई के बाद खरपतवार से मुक्त खेतों में जीरोटिल–ड्रील के बीज बाक्स एवं खाद बाक्स में दानेदार डी.ए.पी. रखकर धान की बुआई करते है। यदि खेत में 25–30 प्रतिशत की नमी रहती है, तो भी इस मशीन से आसानी से बुआई की जा सकती है। दूसरी परिस्थिति में गेहूँ कटाई के बाद खरपतवार से मुक्त खेत में खरपतवार नाशक ग्लाईफोसेट (राउण्ड अप) की 2.5 से 3 लीटर दवा 250–300 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर जमीन में छिड़काव करें, इसके 2–3 दिनों बाद जीरोटिल–ड्रील मशीन द्वारा धान की बुआई की जाती है।

बीज दर: महीन एवं छोटे कद वाले धान की किस्मों में बीज को 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर एवं मोटे कद वाले धान की किस्मों को 60 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर दिया जाता है।

उर्वरको का व्यवहार: धान की सीधी बुआई 80 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से अनुशंसित है। जिसमें दानेदार डी.ए.पी. की 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जीरो टिल–ड्रील के खाद बाक्स में डालते है। म्यूरेट ऑफ पोटाश की 64 किलोग्राम मात्रा खेत में बुआई के समय छिंटतें है। शेष यूरिया की मात्रा तीन बराबर हिस्सों में बांटकर बुआई के एक महीने बाद कल्लें निकलते समय एवं फसल की गाभा के समय खेतों में भुरकाव करते हैं।

सिंचाई: जब खेत में पर्याप्त नमी हो तभी बीज की बुआई करनी चाहिए, यदि खेत में पर्याप्त नमी न हो तो उस परिस्थिति में बुआई के दूसरे या तीसरे दिन हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। इससे बीज का अंकुरण अच्छा होता है। सूखे की स्थिति में सिंचाई कुछ अंतराल पर देनी चाहिए, ताकि खेतों में बाल की तरह दरार नहीं पड़े।

खरपतवार नियंत्रण : जिन खेतों में बुआई के पहले खरपतवारनाशी दवा का छिड़काव नहीं किया गया है, उन खेतों में धान की सीधी बुआई के पाँचवें या छठे दिन ब्यूटाक्लोर शाकनाशी की तीन लीटर मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टयर में छिड़काव कर दें जिससे मौसमी खरपतवार का नियंत्रण हो जाता है। बुआई के 30–35 दिन बाद चौड़ी पत्ती वाली खरपतवार नियंत्रण हेतु 2–4 डी सोडियम साल्ट तृणनाशी की 1–2.5 किलोग्राम मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव कर दें।

जीरो टिल–ड्रील से लाभ

- कदवा या खेत की अन्तिम तैयारी करने में 1500–1600 रू. प्रति हेक्टेयर बचत होती है।
- जीरोटिल–ड्रील से एक हेक्टेयर की बुआई में मात्र 2–5 घंटे लगते है, जबकि परम्परागत विधि द्वारा खेत की तैयारी में 10–12 घन्टे लगते है।
- जीरोटिल–ड्रील मशीन द्वारा एक हेक्टेयर की बुआई में 9–10 लीटर डीजल खपत होती है। वहीं परम्परागत विधि से एक हेक्टेयर की बुआई पर 30–35 लीटर डीजल की खपत होती है।
- मृदा अपरदन कम होता है एवं ऊसर भूमि में भी इसकी बुआई अत्यन्त लाभप्रद पायी गयी है।
- बीज, खाद, सिंचाई इत्यादि संसाधनों का बेहतर प्रबन्धन होता है।
- खरपतवार कम उगते है, जीरो टिल मशीन से बुआई करने पर खाद की पूरी मात्रा पौधे ले लेते है, तथा अन्य खरपतवार उसका उपयोग नही ंकर पाते हैं, जिससे खरपतवार कम पनपते है, और उपज अच्छी मिलती है।

ध्यान में रखने वाली कुछ मुख्य बातें : खेत समतल और साफ–सुथर होना चाहिए कंबाइन हार्वेस्टर से कटे धान से बिखरे हुए पुलाव को हटा देना चाहिए, वरना ये मशीन में फंसेर खाद–बीज बराबर से गिरने में बाधक हो सकते है। धान की फसल को जमीन के पास से काटना चाहिए, क्योंकि इन डंठलो को हटाने में काफी समय बर्बाद हो जाता हे। बुआई के समय मिट्टी में नमी का होना बेहद जरूरी है। अगर नमी कम है, तो बुआई से कुछ दिन पहले खेत में हल्का पानी (पलेवा) लगा लें। बुआई के वक्त दानेदार उर्वरकों का ही इस्तेमाल करें, ताकि वे ठीक से कुंड में गिर सकें। इसके अलावा सीड ड्रिल को चलाते समय ही उठाना या गिराना चाहिए, वरना फरो ओपनर में मिट्टी भर जाती है, जिससे कार्य प्रभावित होता है। तृणनाशी के छिड़काव में फलैट फैन नोजल का ही इस्तेमाल करें। ट्रैक्टर की गति इतनी ही रखें जिसके साथ श्रमिक तेजी से चल सकें, ताकि बीज और खाद वाली पाईप के अवरोध की जाँच की जा सकें।

❋❋❋

फायदेमंद है ग्वारपाठा (एलोवेरा)

कमल महला, मुकेश चंद भठेश्वर एवं पूजा शर्मा
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान

परिचय

ग्वारपाठा (एलोवेरा): भारत में ग्वारपाठा प्रायः सभी जगह पाया जाता है, जिसे संस्कृत में घृतकुमारी कहते हैं। इसके अंग्रेजी में एलोवेरो कहते हैं। यह पौधा जमीन के साथ–साथ गमले में भी लगाया जाता है। अधिक पानी से यह पौधा मर जाता है। कई घरों में इसकी पत्तियों का गूदा निकालकर उस गूदे की सब्जी व अचार भी बनाते हैं। यह अत्यंत उपयोगी पौधा है। प्रायः यह पौधा बड़ा होने पर इसके पास में नये–नये पौधे निकलते हैं। 5–6 इंच बड़ा होने पर उनको दूसरी जगह या गमलों में लगा देना चाहिए। ग्वारपाठे का निरंतर प्रयोग अनेक रोगों में किया जाता है। आजकल कई कंपनियां इससे निर्मित जूस, जैल, टूथपेस्ट, साबुन, क्रीम, हेल्थ ड्रिंक आदि उत्पाद बाजार में बेच रही हैं। लेकिन ताजे ग्वारपाठा का प्रयोग ज्यादा ठीक है। बाजार में बिकने वाले उत्पादों में प्रिजर्वेटिव्स, कलर, कृत्रिम सुगंध आदि मिलाये जाते हैं। ये सभी रासायनिक उत्पाद होने के कारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी हैं। करोड़ों डॉलर के एलोवेरा के उत्पाद पूरे विश्व में प्रतिदिन बिकते हैं, जिन्हें जनसामान्य खरीदता है।

ग्वारपाठा के लाभ

- ग्वारपाठा के गूदे में बेसन या जौ का आटा मिलायें। इसमें आधा चम्मच हल्दी चूर्ण भी मिलाकर चेहरे पर रात को लेप करें व सुबह गुनगुने पानी से धो लें। इससे चेहरे पर झुर्रियां नहीं पड़ती हैं। चेहरे का कालापन व झांइयां मिट जाती हैं।
- ग्वारपाठे का रस 100 मि.ली., तुलसी के पत्तों का रस व नीबू का रस प्रत्येक 25 मि.ली तीनों को मिलाकर चेहरे, हाथ, गर्दन आदि अंगों पर लगाने से त्वचा में निखार आता है। तेज धूप से होने वाले बर्न में भी यह असरकारी है। जहां–जहां सन बर्न का असर हो वहां इसका लेप नियमित करें।
- मंजीठ व हल्दी का चूर्ण 10–10 ग्राम लेकर ग्वारपाठे के 100 मि.ली. ताजे रस में मिलाएं। इसका उबटन पूरे शरीर पर नित्य करें। यदि नित्य संभव न हो सके तो सप्ताह में एक बार अवश्य करें। पूरे शरीर की त्वचा स्वस्थ रहेगी व निखार बना रहेगा।
- सर्दियों में होठ व चमड़ी फट जाती है। खीरे व ग्वारपाठे का रस समान मात्रा में मिलाकर फटी चमड़ी पर लेप करें। कुछ देर बाद गुनगुने पानी से धोकर थोड़ा देसी घी लगाकर मलें। कुछ दिनों में चमड़ी का फटना बंद हो जाएगा व त्वचा हमेशा स्निग्ध बनी रहेगी।
- दाद, खाज या खुजली होने पर ग्वारपाठे के ताजे रस में थोड़ा लहसुन पीसकर मिला लें व गुनगुना करके दाद, खाज, खुजली की जगह लगाकर 30 मिनट तक लगा रहने दें। उसे कपड़े से पोछकर थोड़ा नारियल का तेल लगा दें। इससे रोग मिट जाएगा।
- यदि कहीं जल जाए तो उस हिस्से पर तुरंत ग्वारपाठे का ताजा रस लगा दें। बहुत आराम मिलेगा। इससे घाव व छाला नहीं पड़ता है।
- इसका ताजा रस, शहद और तुलसी के पत्तों के रस में थोड़ी चिरौंजी बारीक पीसकर इस लेप को नियमित चेहरे पर लगाने से चेहरे का कालापन दूर होगा। इससे रंग गोरा व चमकीला हो जाता है।
- नीम की छाल को कूट–पीस कर कपड़े से छान करके रख लें। प्रतिदिन 20 ग्राम इस चूर्ण को 50 ग्राम ग्वारपाठे के ताजे रस में मिलाकर पेस्ट बना लें। चेहरे पर नियमित लेप लगाने से मुंहासे, कील, झुर्रियां व कालापन सभी मिट जाते हैं और चेहरा कान्तिमय हो जाता है।
- शरीर पर कहीं भी फोड़ा हो जाए तो उसको ठीक से साफ करके ग्वारपाठे का ताजा रस, हल्दी, नीम की छाल का चूर्ण व हींग मिलाकर इसे फोड़े पर लगा दें। फोड़ा शीघ्र ठीक हो जाता है।
- अन्दरूनी चोट लगने पर ग्वारपाठे का रस 50 ग्राम, हल्दी 10 ग्राम व दूध पाव भर पीने से दर्द में आराम मिलता है व खून का थक्का नहीं जमता है। इन सभी लाभों को देखते हुए ग्वारपाठे की खेती करनी चाहिए।

उर्वरकों में मिलावट की पहचान किसानों के लिए आसान

मनोज कुमार शर्मा, बी. एस. मीणा एवं राजेन्द्र कुमार यादव
कृषि अनुसंधान केन्द्र उम्मेदगंज, कोटा

खेती–किसानी मे प्रयोग किए जाने वाले कृषि निवेशो में उर्वरक सबसे महँगा कृषि आदान है, जिसका फसल उत्पादन बढाने में 15–30 प्रतिशत का योगदान रहता है। भारतीय कृषि में भी हरित क्रांति के बाद उर्वरकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। भारत चीन के बाद दुनिया में उर्वरकों का दूसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है। इनका उपयोग लगातार 1950–61 से 7 मिलियन टन से बढकर 2018–19 के दौरान 41.5 मिलियन टन तथा 2021–22 में 50 मिलियन टन से अधिक होने का अनुमान लगाया गया है। भारत में उपयोग किए जाने वाले अधिकांश सामान्य उर्वरकों में यूरिया, डीएपी, एमओपी, एसएसपी, एनपीके कॉम्प्लेक्स, जिंक सल्फेट और आयरन सल्फेट आदि शामिल हैं। खपत और इसके बिक्री मूल्य में वृद्धि के साथ, गुणवत्ता नियंत्रण की समस्या भी बढ़ गई है। अनेक क्षेत्रों में उर्वरकों की सीमित उपलब्धता और काला बाजारी से स्तरहीन उर्वरकों की बिक्री आदि के कारण कुछ उर्वरक विनिर्माता फैक्ट्रियों तथा विक्रेताओं द्वारा नकली एवं मिलावटी उर्वरक बनाकर बाजार मे बेचने लगते हैं। बहुधा किसान भाई को शिकायत रहती है की भरपूर खाद–उर्वरक उपयोग करने के बावजूद भी उपज में वांछित बढोत्तरी अर्थात मुनाफा नही हो रहा है। इसकी प्रमुख वजह घटिया–स्तरहीन उर्वरको का प्रयोग ही है। यह सच है की मिलावटी उर्वरको के उपयोग से फसलों के उत्पादन मे गिरावट आती है। उर्वरक उपयोग से वांछित लाभ तभी मिल सकता है जब उनमे पोषक तत्वों की सही मात्रा उपलब्ध हो। गुणवत्ताहीन और मिलावटी रसायनिक उर्वरक खेतों की उर्वरा शक्ति को लील रहा है। उर्वरकों की किल्लत के कारण किसान सही और गलत की पहचान नहीं कर पाते और स्तरहीन उर्वरक का उपयोग करते हैं। इसके कारण अधिक मेहनत व खर्च के बाद भी उन्हें बेहतर उत्पादन नहीं मिल पाता है, और मिट्टी की उर्वरता का ह्रास होने के कारण उत्पादन क्षमता लगातार प्रभावित हो रही है।

खाद देने के उद्देश्य

- **संतुलित पोषक तत्व उपलब्ध कराना :** पौधों को अधिक से अधिक एवं संतुलित मात्रा में सभी आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराना।
- **फसलों से अधिक लाभ प्राप्त करना :** भूमि में बार–बार फसलोत्पादन से मिट्टी में उपस्थिति पोषक तत्वों का ह्रास होने लगता है, अतः अधिक उपज देने वाली फसलों की जातियाँ उगाने के लिए मुख्य तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश मिट्टी में मिलाएं जाते हैं।
- **भौतिक दशा में सुधार :** खाद मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार करके भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाकर उसकी उर्वरता में वृद्धि करते है। खेती में इस्तेमाल होने वाले कृषि आदानों में रासायनिक उर्वरक सबसे महंगा है। खरीफ और रबी से पहले उर्वरक की चरम खपत की अवधि के लिए, उर्वरक निर्माता और व्यापारी नकली और मिलावटी उर्वरक को बाजार में उतारने की कोशिश करते हैं। इसका सीधा असर किसानों पर पड़ता है। सरकार के माध्यम से नकली और मिलावटी उर्वरकों की समस्या को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध है, लेकिन यह आवश्यक है कि किसान उसी तरह उर्वरक की शुद्धता की जांच करें जैसे कि कुचलने पर उत्पन्न ध्वनि से बीज की शुद्धता की जांच की जाती है, रूई को छूने या रगड़ने और दूध को उंगली पर डालने से जांचा जाता है। नकली और मिलावटी खाद के रूप में डीएपी, जिंक सल्फेट, यूरिया, एसएसपी और एमओपी जो अक्सर किसान द्वारा इस्तेमाल किया जाता है, बाजार में बेचा जाता है। उर्वरकों के उपयोग का वास्तविक लाभ उनकी शुद्धता पर निर्भर करता हैं। उर्वरको को देखने मात्र से ही उनकी गुणवता के बारे में पता नहीं लग सकता है। खरीद के समय किसान को सबसे पहले आसान विधि का पालन करके शुद्धता की जांच करनी चाहिए। वैज्ञानिकों ने उर्वरकों की जांच व परख के लिये कुछ सरल नुस्खे विकसित किये हैं, जिनको अपना कर किसान भाई स्वयं उनकी गुणवता की जांच कर सकते हैं। यह नुस्खे किसानों के लिए काफी सरल व लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

(1) यूरिया : यह प्रमुख पोषक तत्व नत्रजन प्रदान करने वाला उर्वरक है जिसमे 46 प्रतिशत नत्रजन पाया जाता है। कृषि क्षेत्र में सबसे अधिक मात्रा में इस उर्वरक का उपयोग किया जाता है। प्रतिवर्ष फसल बुआई के समय यूरिया की बाजार में कमी देखी जाती है जिसके कारण कई विक्रेता घटिया अथवा मिलावटी यूरिया किसानो को बेच देते हे जिससे किसान को बांछित लाभ नही हो पाता है। अतः यूरिया खाद खरीदने से पहले उसकी गुणवत्ता की जांच करना उचित होता है। यूरिया की जांच के लिये निम्न में से कोई एक तरीका काम में ले सकते हैं :–

1. शुद्ध यूरिया चमकदार, लगभग समान आकार के दाने वाला, पानी में पूर्णतया घुल जाना, घोल को छूने पर शीतलता की अनुभूति, गर्म तवे पर रखने से पिघल जाना, आँच (लौ) तेज करने पर कोई

अवशेष न बचना, आदि सामान्य बातें हैं।

2. हथेली पर थोड़ा पानी लें, 2 मिनट बाद जब हथेली और पानी का ताप अनुरूप (एकसा) हो जाये तब 10–15 दानें यूरिया के डालें, शुद्ध यूरिया का घोल स्वच्छ होगा, यदि सफेद अवशेष आता है तो यूरिया मिलावटी है।

3. 100 मि.ली. क्षमता वाले बीकर में एक चम्मच यूरिया लेवें जिसमें 50–70 मि.ली. आसुत जल (डिस्टिल वाटर) डालकर ग्लास की छड़ी से हिलाऐं ताकि यूरिया अच्छी तरह से घुल जाए। यदि बीकर के धोल में अवशेष की मात्रा अधिक नजर आए तो समझे की यूरिया नकली है। यदि बीकर में अघुलनशील अवशेष थोडी बहुत मात्रा में है तो यूरिया में मिलावट नही है।

4. एक ग्राम यूरिया (उर्वरक) परखनली में लें तथा 5 मिली. आसुत जल मिलायें और पदार्थ को घोलें एवं 5–6 बूँद सिल्वर नाइट्रेट घोल मिलायें, दही जैसा सफेद अवशेष का बनना यह प्रदर्शित करता है कि पदार्थ मिलावटी है। किसी भी अवशेष का न बनना शुद्ध यूरिया को बताएगा।

5. एक कांच की परखनली में थोड़ी मात्रा यूरिया की लेवें तथा गैस के बुलबुले निकले तब तक गर्म करते रहें। गर्म करने (170° से. तक) के उपरान्त यूरिया अमोनिया व बाइयूरेट में बदल जाता है। अब घुलनशील बाइयूरेट में 7 मि.ली. डिस्टिल वाटर डालें। फिर कास्टिक सोडा के घोल की कुछ बूंदें डाले जिससे घोल क्षारीय बन जावें। यदि कॉपर सल्फेट की बूंद डालने पर बैगनी या गुलाबी या गहरा नीला रंग उत्पन्न होता है तो समझे कि यूरिया नकली नही है।

(2) डाय अमोनियम फॉस्फेट

यह यूरिया के बाद सर्वाधिक मात्रा में उपयोग में लाया जाने वाला महत्वपूर्ण उर्वरक है जिसमे 18 प्रतिशत नत्रजन और 46 प्रतिशत फॉस्फोरस पाया जाता है। डी.ए.पी. की शुद्धता निम्न में से कोई भी एक तरीका अपनाकर की जा सकती है।

1. सामान्यतः शुद्ध डी.ए.पी. के दानो का आकार एकदम गोल नहीं होता, डी.ए.पी. के दानो को गर्म करने या जलाने पर दाने साबूदाने की भांति फूलकर लगभग दोगुने आकार के हो जायें तो वह शुद्ध होगा। डी.ए.पी. के दानों को लेकर फर्श पर रखें, फिर जूते के तले से रगड़ें, शुद्ध डी.ए.पी. के दाने आसानी से नहीं टूटेते, यदि आसानी से टूट–फुट जायें तो डी.ए.पी. में मिलावट है।

2. डी.ए.पी.में नाइट्रोजन की जाँच के लिए 1 ग्राम पीसे डी.ए.पी. में चूना मिलायें, सूँघने पर यदि अमोनिया की गंध आती है तो डी.ए.पी. में नाइट्रोजन उपस्थित है यदि नही तो डी.ए.पी. मे मिलावट हो सकती है।

3. एक परखनली में आधा चम्मच डी.ए.पी. डालकर उसमें कास्टिक सोडा 5 मि.ली. का गाढ़ा घोल मिलाकर स्प्रिट लैम्प पर गर्म करें। शुद्ध डी.ए.पी. होने पर परखनली से अमोनिया की तीखी गंध निकलेगी जो सूंघकर महसूस की जा सकती है। नकली डी.ए.पी. होने पर अमोनिया गैस नही निकलेगी।

4. एक ग्राम पिसा नमूना परखनली में लें, 5 मि.ली. आसुत जल (डिस्टिल्ड वाटर) मिलायें और हिलायें, फिर 1 मिली. नाइट्रिक अम्ल मिलायें, फिर हिलायें, यदि यह घुल जायें एवं घोल अर्ध–पारदर्शी हो जायें तो डी.ए.पी. शुद्ध है यदि कोई पदार्थ अघुलनशील बचता है, तो मिलावट है।

5. एक ग्राम पिसा हुआ नमूना लें तथा 5 मि.ली. आसुत जल में घोलें, हिलाये, फिल्टर पेपर से छाने, उस फिल्ट्रेट में 1 मिलीलीटर सिल्वर नाइट्रेट घोल मिलायें, पीले अवक्षेप का बनना । जो 5–6 बूँद नाइट्रिक एसिड को मिलाने पर घुल जाये तो पदार्थ मे फास्फेट उपस्थित है और डी.ए.पी. शुद्ध है। यदि अवक्षेप सफेद है तो मिलावट है।

(3) सिंगल सुपर फॉस्फेट

नत्रजन के बाद दूसरा आवश्यक पोषक तत्व फॉस्फोरस है तथा फसलो की उपज बढाने में कारगर सिद्ध हो चूका है। इसकी शुद्धता की जांच निम्नानुसार की जा सकती है।

1. दानेदार पाउडर, काला भूरा आदि रंगों में से एक दाना हथेली पर रगड़ने से आसानी से टूट जाये तो शुद्ध है।

2. एक ग्राम उर्वरक परखनली में लें, 5 मिली. आसुत जल मिलायें तथा अच्छी तरह हिलाये और छानें तथा 5–6 बूँद सिल्वर नाइट्रेट घोल मिलायें यदि पीला यदि पीला अवक्षेप है एवं घुल जाये तो फास्फेट की उपस्थिति है, यदि नहीं तो पदार्थ संदिग्ध है।

3. आधे चम्मच उर्वरक को 5 मिली. आसुत जल में घोलें, ऊपरके निथरे भाग को दूसरी परखनली में लेकर 15–20 बूँदें सिल्वर नाइट्रेट के घोल को मिलायें, हल्का दूधिया अवक्षेप प्राप्त होता है, इसमें 2–3 बूँद तनु कास्टिक सोडा मिलाने पर पीला अवक्षेप आता है तो उर्वरक शुद्ध है यदि ऐसा नहीं होता तो शुद्ध समझें।

4. 250 मि.ली. वाले कॉनिकल फ्लास्क में 1–2 चम्मच उर्वरक लेवें। जिसमें 10–15 मि.ली. आसुत जल (डिस्टिल वाटर) डालें। मिश्रण को 5–10 मिनट के लिए हिलायें। इसके बाद घोल को

छान लेवें। फिर 2–3 मि.ली. छना हुआ घोल एक कांच की परखनली में लेवें। इसमें कुछ बुंदे मिथाइल ओरेन्ज सूचक (इण्डीकेटर) की डालें। यदि लाल या ओरेन्ज रंग विकसित होता है तो उर्वरक नकली नही है तथा यह फिल्ट्रेट की अम्लीयता को प्रदर्शित करता है। यदि परखनली का घोल पीला या हरा रंग का हो जाये जिससे यह प्रतीत होता है कि उर्वरक में कुछ मिलावट है तथा उर्वरक में चूना मिला हुआ हो सकता है अर्थात उर्वरक नकली है।

(4) म्यूरेट ऑफ पोटाश

अधिकाँश भारतीय मिट्टियों में पोटाश तत्व की कमी नही रहती है फिर भी संतुलित उर्वरक उपयोग के लिए नत्रजन और फॉस्फोरस के साथ पोटेशियम युक्त उर्वरक मसलन म्यूरेट ऑफ पोटाश देने की अनुसंशा की जाती है। इसकी सुधता की परख निम्नानुसार की जा सकती है।

1. एक ग्राम उर्वरक परखनली में लें, 5 मिली आसुत जल मिलायें व अच्छी तरह हिलायें अधिकांश उर्वरक धुल जाये तथा कुछ अघुलनशील कण पानी की सतह पर तैरें तो शुद्ध पोटाश (एम.ओ. पी.) होगी, यदि अधिकांश अघुलनशील पदार्थ परखनली के तले पर बैठ जाये तो समझे उर्वरक मे मिलावट है।

2. शुद्ध पोटाश (एम.ओ.पी.) पानी में पूर्णतया घुलनशील, रंगीन पोटाश (एम.ओ.पी.) का लाल भाग पानी पर तैरता है यदि ऐसा है तो पोटाश (एम.ओ.पी.) शुद्ध है अन्यथा नहीं, शुद्ध पोटाश (एम.ओ.पी.) के कण नम करने पर आपस में चिपकते नहीं।

3. एक चम्मच उर्वरक को 10 मिली जल में घोंले, निथरे भाग से 2 मि .ली.घोल में 2 मि.ली. तनु हाइड्रो क्लोरिक एसिड का घोल मिलायें, इसमे 1 मि.ली. बेरियम क्लोराइड मिलाने पर यदि स्वच्छ घोल बनता है तो उर्वरक शुद्ध है और यदि सफेद अवक्षेप है तो समझे मिलावट है।

(5) अमोनियम सल्फेट

एक चम्मच (लगभग 1 ग्राम) अमोनियम सल्फेट बीकर में लेवें। जिसमें 50–70 मि.ली. आसुत जल (डिस्टिल वाटर) डालकर कांच की छड़ी से हिलाऐं ताकि उर्वरक अच्छी तरह से घुल जावें। यदि घोल में निश्चित मात्रा में अघुलनशील पदार्थ रह जावें तो अमोनियम सल्फेट नकली हो सकता है तथा उसमें कुछ मिला हुआ है। यदि घोल का रंग हल्का भूरा है तो उर्वरक में किसी प्रकार की मिलावट नही है तथा उर्वरक शुद्ध होगा।

(6) कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (कैन)

1. एक कांच की परखनली में आधा चम्मच उर्वरक डालकर गर्म करें। यदि तीखी अमोनिया की गंध आती हैं तो कैन नकली है।

2. एक चम्मच कैन उर्वरक 100 मि.ली. क्षमता वाले बीकर में लेवें। इस बीकर में 50–70 मि.ली. आसुत जल डाले तथा उर्वरक को घोलने के वास्ते किसी कांच की छड़ी से हिलाऐं। घुलनशील सामग्री (C_aCO_3) की विशेष मात्रा बीकर के तल पर बैठ जायेगी। बीकर में पारदर्शी धोल नजर आने के बजाय उसमें संदेह युक्त घोल नजर आयेगा। यह संदेह युक्त घोल अमोनियम नाइट्रेट उपस्थित होने की वजह से ठण्डा महसूस होगा।

(7) जिंक सल्फेट

सूक्ष्म पोषक तत्व जिंक प्रदान करने वाला यह उर्वरक है। धान–गेंहू फसल चक्र वाले क्षेत्रो में इस तत्त्व की कमी देखी जा रही है। जिंक सल्फेट में मैंग्नीशियम सल्फेट प्रमुख मिलावटी रसायन है। इसकी सुधता की जांच निम्नानुसार की जा सकती है।

1. आसुत जल में घुलनशील लेकिन इसका घोल यूरिया या एम.ओ.पी. की तरह ठंडा नही होता तो शुद्ध पदार्थ है।

2. डी.ए.पी. के घोल मे जिंक सल्फेट के घोल को मिलाने पर थक्केदार घना अवक्षेप बन जाता है, जबकि मैग्नीशियम सल्फेट के साथ ऐसा नहीं होता।

3. जिंक सल्फेट के घोल में पतला कास्टिक का घोल मिलाने पर सफेद, मटमैला मांड़ जैसा अवक्षेप बनता है, जिसमें गाढ़ा कास्टिक का घोल मिलाने पर अवक्षेप पूर्णतया घुल जाता है। यदि जिंक सल्फेट की जगह पर मैंग्नीशियम सल्फेट है तो अवक्षेप नहीं घुलेगा।

4. एक ग्राम उर्वरक परखनली में लें, 5 मि .ली . आसुत जल मिलायें, अच्छी तरह हिलायें, फिल्टर पेपर में छाने 8–10 बूँद तनु सोडियम हाइड्राक्साइड का घोल मिलायें, सफेद पदार्थ बनता है, तब 10–12 बूंदें सांद्र सोडियम हाइड्राक्साइड घोल मिलायें अगर अवक्षेप घुल जायें तो पदार्थ शुद्ध है अन्यथा नहीं। किसान भाईयों को सलाह है कि आप स्वयं अपने स्तर पर ऐसे तरीके अपना कर उर्वरको की शुद्धता की जांच करलें तो आप मिलावटी व नकली उर्वरकों से बच जायेगें। इससे आप की फसल को भी पूरा लाभ मिलेगा व आर्थिक हानि भी नही होगी। यदि आपको उक्त परिक्षणो के द्वारा किसी उर्वरक के नकली होने का संदेह हो, तो क्षेत्र के कृषि विभाग के अधिकारियों को तुरन्त सूचित करें ताकि विक्रेता के यहां से नमुना लेकर उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जा सके। किसान भाईयों ध्यान रखें, विक्रेता से खरीदे गये उर्वरक का बिल जरूर लेवें।

सरसों की आनुवंशिक संवर्धित संकर किस्म 'डी एम् एच 11' -जोखिम एवं संभावनाएं

खजान सिंह, पी के पी मीना, वर्षा गुप्ता एवं मंजू मीना
कृषि अनुसन्धान केन्द्र उम्मेदगंज, कोटा

भारत खाद्य तेलों के उपभोक्ताओं में द्वितीय तथा आयातकों में प्रथम स्थान पर है। देश अपनी आवश्यकता का लगभग 60 प्रतिशत खाद्य तेल दूसरे देशों यथा अर्जेंटीना, ब्राजील, इंडोनेशिया, मलेशिया, रूस और यूक्रेन से आयात करता है। सरसों देश में मुख्य तिलहनी फसल है। यह राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा मध्य प्रदेश में लगभग 70 लाख हेक्टेयर में उगाई जाती है। देश में सरसों की उत्पादकता (1511 किग्रा/है.) अन्य देशों से कम है। वर्ष 2021–22 में भारत ने लगभग 14–14.5 MT खाद्य तेल (जिसकी कीमत 1.5 लाख करोड़ थी) का आयात किया था। अतः देश में तिलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है।

केंद्र सरकार के अनुसार आनुवंशिक संवर्धित संकर किस्म सरसों के उत्पादन बढ़ने में कारगर साबित होगी। डी एम् एच 11 संकर किस्म से सरसों के उत्पादन तथा इसे उगाने वाले किसानों की आय में वृद्धि होने की आशा की गई है। सरसों की ट्रांसजेनिक संकर किस्म डी एम् एच 11 को आनुवंशिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति द्वारा अनुमोदन तथा इसके बीजोत्पादन हेतु पर्यावरणीय स्वीकृती हेतु सिफारिश की गई है। यद्यपि इस अनुमोदन में यह शर्त लगाई गई है कि यह अनुमोदन शुरू में चार वर्ष के लिए दिया गया है तथा इस संकर किस्म का मधुमक्खियों एवं अन्य परागणक कीटों पर होने वाले प्रभाव का प्रक्षेत्र अध्ययन किया जायेगा, उसके बाद अनुमोदन 2 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

जैसा कि सामान्यतः आनुवंशिक संवर्धित फसलों के साथ है, आनुवंशिक संवर्धित सरसों की स्वीकृती का कुछ समूहों द्वारा विरोध किया जा रहा है। मुख्य आपत्ति इस संकर किस्म की तीसरी जीन 'बार जीन' को लेकर है, जो कि आनुवंशिक संवर्धित सरसों पौधों को ग्लूफोसिनेट शाकनाशी के प्रति सहिष्णु बनाता है। आनुवंशिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति ने शाकनाशी का केवल संकर बीजोत्पादन में ही प्रयोग करने का अनुमोदन किया है, न कि किसानों के द्वारा व्यावसायिक उत्पादन में प्रयोग करने में।

डी एम् एच 11 सरसों की आनुवंशिक रूप से संवर्धित संकर किस्म है। यह किस्म दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर दीपक पेंटल द्वारा राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड तथा जैव प्रोधोगिकी विभाग के सहयोग से सरसों की उपज बढ़ने के उद्देश्य से विकसित की गई थी। डी एम् एच 11 गैर रोगजनक मृदा जीवाणु बैसिलस एमाइलोलिक्विफेसिएन्स से आनुवंशिक पदार्थ (बार, बारनेस तथा बारस्टार) पृथक कर सरसों के पौधे में अन्तर्निवेश कर सन 2002 में विकसित की गई। बारनेस जीन के अन्तर्निवेश से नर बंध्यता उत्पन्न होती है, बारस्टार जीन पौधे में प्रजनन क्षमता संकर बीज पैदा करने की क्षमता बहाल करता है। डी एम् एच 11 संकर किस्म विकसित करने हेतु पैतृक स्ट्रेन अर्ली हिरा उत्परिवर्ती (EH 2) तथा वरुणा बी एन 3.6 को प्रयोग में लिया गया है। डी एम् एच 11 में अन्तर्निवेश तीसरी जीन 'बार जीन' फोस्फोनिथरिसिन एन एसिटिल ट्रांस्फरेज एंजाइम उत्पादित करती है, जो ग्लूफोसिनेट अवरोधकता के लिए उत्तरदायी होता है। यह एंजाइम ग्लूफोसिनेट शाकनाशी में उपस्थित सक्रिय तत्व फोस्फिनोतरीसिं को विषहीन कर देता है।

सन 2014–15 में डी एम् एच 11 संकर किस्म का भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के अंतर्गत जैव सुरक्षा अनुसंधान स्तर परिक्षण किया गया। इस आनुवंशिक रूप से संवर्धित संकर किस्म का सुरक्षा अनुसंधान आणविक लक्षण वर्णन, खाद्य सुरक्षा, वातावरणीय सुरक्षा तथा खोज आचारशास्त्र श्रेणियों में किया गया। आणविक लक्षण वर्णन में डी एम् एच 11 के डी एन ए अनुक्रम में बार, बारनेस तथा बारस्टार जींस का अभिव्यक्ति अध्ययन किया गया है। खाद्य सुरक्षा परीक्षण में रचनात्मक तथा जैव सूचना विज्ञानं विश्लेषण द्वारा इस किस्म में तीन प्रोटीन्स की विषाक्तता को परखा गया तथा वातावरणीय सुरक्षा परीक्षण में इस किस्म के संभावित खरपतवारीय तथा आक्रामक मापदंडों का परीक्षण किया गया। परीक्षणों के आधार पर प्रस्तुत रिपोर्ट में डी एम् एच 11 को मानव उपयोग के लिए सुरक्षित तथा पोषक बताया गया है।

कंट्रोवर्सी

स्वास्थ्य पर प्रभाव : उच्चतम न्यायलय द्वारा गठित तकनीकी विशेषज्ञ समिति ने 2013 की रिपोर्ट में शाकनाशी सहिष्णु ट्रांसजेनिक फसलों पर पूर्ण प्रतिबन्ध की सिफारिश की थी। तकनीकी विशेषज्ञ समिति ने किसानों द्वारा शाकनाशी के अति उपयोग से नकारात्मक स्वास्थय प्रभाव की सम्भावना बताई गई।

परिस्थिक प्रभाव : डी एम् एच 11 के व्यवसायीकरण से सुपर वीड बनने की सम्भावना है। डी एम् एच 11 ग्लूफोसिनेट सहिष्णु है, जिससे किसान शाकनाशी का अति उपयोग कर सकते हैं और खरपतवारों पर कृत्रिम चयन दबाव होने से ग्लूफोसिनेट अवरोधी खरपतवार प्रजाति उत्पन्न हो सकती है। डी एम् एच 11 के व्यावसायिक खेती में इसके सरसों की अन्य जंगली प्रजातिओं के साथ परपरागण द्वारा ब्रेसिका जीनस की समृद्ध विविधता के अनुवांशिक प्रदूषण की आशंका है। सरसों के पौधों में कीटों व हवा द्वारा परागण होता है, इसके परपरागण होने के कारण सरसों जनन द्रव्य के प्रदूषित होने की संभावना है।

नया बीज खरीदने की बाध्यता: आनुवंशिक संवर्धित बीजों को किसान दुबारा बुवाई के काम में नहीं ले सकते हैं, किसान को कंपनियों से हर बार नया बीज खरीदना पड़ेगा ।

एकाधिकार: आनुवंशिक संवर्धित बीजों के उत्पादन एवं बीज बिक्री में कुछ ही कंपनियां होती हैं, अतः इन बीजों के व्यापर में इन कंपनियों का एकाधिकार हो जायेगा और मनमाने दामों पर बीज बिक्री करेंगी।

उपज: प्रक्षेत्र परीक्षणों में डी एम् एच 11 की उपज प्रचलित किस्मों से 30 प्रतिशत अधिक पाई गई है यद्यपि इस संकर किस्म में दो लक्षण यथा फली की लम्बाई एवं बीज का आकार कम पाए गए हैं। केंद्रीय वन, पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने आशा व्यक्त की है कि आनुवंशिक संवर्धित सरसों संकर किस्म के अपनाने से सरसों के उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ खाद्य तेलों पर दूसरे देशों पर निर्भरता में भी कमी होगी ।

कृषि में समुद्री शैवाल उर्वरक का महत्व

संतोष यादव, ममता एवं राजेन्द्र कुमार यादव
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर एवं कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा

समुद्री शैवाल उर्वरक क्या है?

समुद्री शैवाल उर्वरक : समुद्री शैवाल से बना जैविक उर्वरक है जिसका उपयोग कृषि में मृदा की उर्वरता एवं पौधों की वृद्धि को बढ़ाने के लिए किया जाता है। इनका उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है। इनको कई अलग–अलग रूपो में लागू किया जा सकता है, जिसमें परिष्कृत तरल अर्क, सूखे और चूर्णित कार्बनिक पदार्थ शामिल हैं। विभिन्न जैव सक्रिय अणुओं की संरचना के माध्यम से समुद्री शैवाल एक प्रबल मृदा कंडीशनर, जैव उपचारक और जैविक कीट नियंत्रण के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक समुद्री शैवाल फाइला के साथ मृदा और फसल के स्वास्थ्य के लिए विभिन्न लाभ प्रदान करता है। उर्वरकों के रूप में उपयोग किए जाने वाले समुद्री शैवाल आमतौर पर बड़े किफायती शैवाल होते है। जैसे कि मैक्रोएल्गे, एस्कोफिलमनोडोसम और समुद्री सिस्ट। समुद्री शैवाल उर्वरक का विकास तीन चरणों में होता है। (i) सड़ा हुआ समुद्री शैवाल। (ii) समुद्री शैवाल राख (पाउडर) (iii) समुद्री शैवाल का अर्क।

समुद्री शैवाल उर्वरक में मुख्य पदार्थ समुद्री शैवाल का अर्क है। मुख्य कच्चा माल प्राकृतिक समुद्री शैवाल से चुना जाता है। विशेष जैव रासायनिक प्रक्रिया के बाद समुद्री शैवाल का सार निकाला जाता है। जो प्राकृतिक सक्रिय घटकों को बरकरार रखता है इसमें बड़ी मात्रा में गैर नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक पदार्थ, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, जस्ता, आयोडीन और अधिक तत्व होते हैं। 40 प्रकार के खनिज तत्व और समृद्ध विटामिन, विशेष रूप से समुद्री शैवाल पॉलीसेकेराइड, एल्गिनिक एसिड, अत्यधिक असंतृप्त फैटी एसिड और विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक पौधों के वृद्धि नियामक होते हैं जैसे ऑक्सिन, साइटोकिनिन और जिबरेलिन आदि, जिनमें उच्च जैविक गतिविधि होती है और अंतर्जात हार्मोन के संतुलन को नियंत्रित करते हैं। विशेष उपचार के बाद, समुद्री शैवाल में सक्रिय घटक सक्रिय अवस्था में होते हैं जो पौधों द्वारा आसानी से अवशोषित हो जाते हैं।

समुद्री शैवाल के प्रकार

समुद्री शैवाल को रंजकता के आधार पर तीन व्यापक समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है भूरा, लाल और हरा वनस्पतिशास्त्री इन व्यापक समूहों को क्रमशः फियोफाइसी, रोडोफाइसी और क्लोरोफाइसी के रूप में संदर्भित करते है।

समुद्री शैवाल उर्वरको के कार्य और लाभ

मृदा की उर्वरता

समुद्री शैवाल एक जैविक उर्वरक के रूप में कार्य करता है। चूंकि समुद्री शैवाल सूक्ष्म और वृहद पोषक तत्व, ह्यूमिक एसिड और फाइटोहोर्मोन में समृद्ध है, यह मृदा की उर्वरता को बढ़ाता है। इसके अलावा समुद्री शैवाल से प्राप्त उर्वरकों में पॉलीसेकेराइड, प्रोटीन और फैटी एसिड होते हैं जो मृदा की नमी और पोषक तत्वों को बनाए रखने में मदद करते हैं, जिससे फसल की वृद्धि में सुधार होता है। समुद्री शैवाल में जानवरों के उत्पादों की तुलना में अधिक सूक्ष्म खनिज पाए जाते हैं। समुद्री शैवाल उर्वरकों के उपयोग से अजैविक तनावों के प्रति सहनशीलता में वृद्धि होती है जो आम तौर पर कम नमी, उच्च लवणता और ठंड जैसेः फसल की वृद्धि और उपज को बाधित करते हैं। ये तनाव सहिष्णुता लाभ समुद्री शैवाल द्वारा फसलों में प्रेरित शारीरिक परिवर्तनों से प्रेरित प्रतीत होते हैं, जिसमें बेहतर ऊर्जा भंडारण, बढ़ी हुई जड़ आकृति और अधिक चयापचय क्षमता शामिल है, जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए पौधे की क्षमता में वृद्धि होती है।

मृदा कंडीशनर

मृदा कंडीशनर के रूप में, समुद्री शैवाल उर्वरक मिट्टी के भौतिक गुणों, जैसे वातन और जल प्रतिधारण क्षमता में सुधार करते हैं। मिट्टी जिसमें कार्बनिक पदार्थ और सरंध्रता की कमी होती है, वो समुद्री शैवाल में पाए जाने वाले ह्यूमिक एसिड और घुलनशील एल्गिनेट्स से लाभान्वित होती है। ये यौगिक धात्विक मूलकों के साथ बंधकर मिट्टी के कणों को एकत्रित करते हैं, जिससे मृदा की बनावट, वातन और मिट्टी की अवधारण में सुधार होता है। एल्गिनेट्स का क्षरण भी मृदा को कार्बनिक पदार्थो के साथ पूरक करता है, इसकी उर्वरता को बढ़ाता है। विशेष रूप से भूरे समुद्री शैवाल जैसे सरगसुम को मूल्यवान मृदा कंडीशनिंग गुणों के लिए जाना जाता है। इस समुद्री शैवाल में घुलनशील एल्गिनेट्स के साथ–साथ एल्गिनिक एसिड होता है, जो कार्बनिक पदार्थो के जीवाणु अपघटन को उत्प्रेरित करता है। यह प्रक्रिया नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया की आबादी को बढ़ाकर और इन जीवाणुओं द्वारा उत्पादित अपशिष्ट उत्पादों के माध्यम से अतिरिक्त कंडीशनर के साथ मृदा को पूरक करके मृदा की गुणवत्ता में सुधार करती है।

प्रदूषित मृदा का जैव उपचार

समुद्री शैवाल हानिकारक प्रदूषकों के सोखने के माध्यम से जैव उपचारकर्ता के रूप में कार्य करता है। एल्गल सतह पर कार्यात्मक समूह जैसे एस्टर, हाइड्रॉक्सिल, कार्बोनिल, अमीनो, सल्फ़हाइड्रील और फॉस्फेट समूह भारी धातु आयनों के जैव अवशोषण को संचालित करते हैं। समुद्री शैवाल उर्वरक द्वारा संचित भारी धातुएँ का फसलों में स्थानांतरित होने की संभावना हैं, जिससे सार्वजनिक स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।

समुद्री शैवाल को बायोचार मे बदला जा सकता है जिसको मृदा मे कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वो को बढ़ाने के साधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के समुद्री शैवाल अद्वितीय पोषक तत्व और पैरामीटर प्रदान करते हैं उदाहरण के लिए, लाल समुद्री शैवाल बायोचार जो पोटेशियम और सल्फर से भरपूर होता है। तथा भूरे समुद्री शैवाल से उत्पन्न बायोचार की तुलना में अधिक अम्लीय होता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन

मृदा में समुद्री शैवाल मिलाने से फसल के स्वास्थ्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। समुद्री शैवाल में विभिन्न प्रकार के जैव सक्रिय अणु होते हैं जो बीमारियों और कीटों से लडने की क्षमता को बढ़ाते हैं, जिनमें स्टेरॉयड, टेरपेन्स, एसिटोजिनिन और अमीनो एसिड व्युत्पन्न पॉलिमर शामिल हैं। समुद्री शैवाल के अर्क का उपयोग निमेटोड और कीड़ों सहित हानिकारक कीटों की उपस्थिति को कम करता है। जबकि समुद्री शैवाल का प्रयोग निमेटोड संक्रमण के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए प्रतीत होता है, समुद्री शैवाल के अनुप्रयोग और कार्बोफ्यूरान एक रासायनिक सूत्रकृमि का संयोजन, सबसे प्रभावी प्रतीत होता है।

कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन कृषको के लिए एक लाभकारी नवाचार

हरफूल मीणा, सुश्री मनोज ,राजेन्द्र कुमार यादव एवं उदिति धाकड
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा (राजस्थान) एवं
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

भारत कृषि प्रदान देश हैं सदियों से भारतीय कृषि पूरी तरह से मौसम एवं विशेष रूप से मानसून की अनिश्चितताओं पर निर्भर रही है। मौसम एवं जलवायु की अनिश्चितता जैसे की भारी बारिश, चक्रवात, ओलावृष्टि, शुष्क मौसम, सूखा, गर्मी की लहर, शीत लहर एवं पाला जैसी चरम मौसमी घटनाओं से हर साल फसल उत्पादन में काफी नुकसान होता हैं जो की देश की खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है। मिट्टी एवं जल संसाधनों के साथ–साथ उपलब्ध जलवायु संसाधनों का कुशल उपयोग, चरम मौसम के प्रतिकूल प्रभाव को कम करता हैं व अनुकूल मौसम को लाभदायक बनाता है। मौसम सेवाएं कृषकों को सलाह के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारीयाँ प्रदान करती हैं जिनसे कृषक अनुकूल मौसम का लाभ उठाकर कृषि उत्पादन में जबरदस्त बढोत्तरी ला सकता हैं और साथ में मौसम के प्रतिकूल प्रभाव को कम करके नुकसान से बच सकता हैं।

देश के कृषक समुदाय को प्रत्यक्ष रूप से सेवाएं प्रदान करने के लिए, फसलों पर प्रतिकूल मौसम के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से पुणे (महाराष्ट्र) में भारत मौसम विज्ञान विभाग (आई. एम. डी.) द्वारा 1932 में कृषि मौसम विज्ञान का एक विशेष प्रभाग स्थापित किया गया था। वर्तमान परिस्थितियो में कृषि आदानों के कुशल प्रबंधन के लिए मौसम पूर्वानुमान अधिक महत्वपूर्ण कार्य होता जा रहा है। लंबी अवधि के लिए पूर्वानुमान की सटीकता एक बड़ी चुनौती है, लेकिन हाल के वर्षो में मध्यम श्रेणी के मौसम के पूर्वानुमानों में आधुनिक तकनीकी के समावेश के कारण काफी हद तक सुधार हुआ है। कृषि पद्धतियों की प्रभावी योजना और प्रबंधन के लिए सभी अस्थायी श्रेणियों में मौसम के पूर्वानुमान वांछनीय हैं। प्रतिक्रिया रणनीति के विकास ने कृषकों को प्रतिकूल मौसम की स्थिति के कारण होने वाले नुकसान को कम करने में मौसम आधारित कृषि जानकारीयों का उपयोग करने के संभावित लाभों का एहसास करने में मदद की, जिससे कृषि उत्पादन की उपज, मात्रा एवं गुणवत्ता में सुधार हुआ। लघु एवं मध्यम अवधि के मौसम पूर्वानुमान दैनिक कृषि कार्यो में अल्पकालिक समायोजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मध्यम श्रेणी के मौसम पूर्वानुमान पर आधारित कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन (ए. ए. बी.) का उपयोग मौसम से प्रेरित कीट एवं बीमारियों के जोखिम को कम करने के लिए किया जाता हैं।

कृषि सलाहकार प्रणाली में कुछ कमियों के कारण कृषक समुदाय की माँग को पूरी तरह से पूर्ण नहीं किया जा सका। इसके अलावा वास्तविक फसल डेटा की अनुपलब्धता, परामर्श में मौसम पूर्वानुमान की व्याख्या के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली की कमी, समस्या का विवेकपूर्ण समाधान करने के लिए क्षेत्र में प्रचलित कृषि स्थिति पर उचित ज्ञान आवश्यक हैं। इसमें फसलों का प्रकार, अवस्था, प्रचलित कीट, रोग, मिट्टी में नमी की स्थिति, पशु स्वास्थ्य, पशु पोषण की स्थिति एवं कृषि विपणन की स्थितिया शामिल हो सकती हैं। क्षेत्र की प्रमुख फसलों एवं कृषि में प्रचलित समस्याओं के सापेक्ष आर्थिक महत्व को ध्यान में रखते हुए कार्यो को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रबंधन अभ्यास जैसे कि क्या, कब और कैसे बोना है, कब और कितना सिंचाई करना है, कीट व बीमारियों, तापमान, हवा एवं वर्षा आदि के कारण होने वाले तनाव से पौधों या जानवरों की सुरक्षा के लिए क्या उपाय अपनाए जाने चाहिए। पशु आश्रय, पोषण एवं उनका स्वास्थ्य काफी हद तक मौंसम से प्रभावित होता है, इसलिए कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन (ए.ए.बी.) में इन कार्यो को जगह दी जानी चाहिए। कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन (ए.ए.बी.) में शुरुआती चेतावनी के कार्य भी होने चाहिए, जो की उत्पादकों को विभिन्न मौसम की घटनाओं जैसे अत्यधिक तापमान, भारी बारिश, बाढ़ एवं तेज हवाओं के प्रभावों के प्रति सचेत करते हैं।

कृषि मौसम परार्मश सेवाएँ

वास्तविक समय में किसान की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कृषि से संबन्धित संगठनों जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि मंत्रालय, केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालयो, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं अन्य एजेंसियां को शामिल करते हुए देश में एक अत्याधुनिक कृषि मौसम परार्मश (ए.ए.एस.) एवं एकीकृत कृषि मौसम परार्मश सर्विस अप्रैल 2007 से शुरू की गई हैं।

कृषि मौसम परार्मश का व्यापक दायरा

मानसून की शुरुआत के आधार पर खरीफ फसलों की बुवाई व रोपाई मिट्टी में उपलब्ध नमी के आधार पर करे। उर्वरक आवेदन हवा की स्थिति एवं वर्षा की तीव्रता को देखते हुएं उचित समय पर करे, कीट एवं बीमारी के होने की भविष्यवाणी उचित समय पर रोग निरोधी उपायो के साथ करे। फसलो की उचित वृद्धि और विकास के लिए नियमित अंतराल पर निराई–गुड़ाई करना, फसल की नाजुक अवस्था पर सिंचाई के लिए मौसम संबन्धित दहलीज का उपयोग करके सिंचाई जल की मात्रा व समय एवं फसलों की समय पर कटाई के लिए सलाह जारी की जाति हैं।

कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन

कृषि मौसम परार्मश बुलेटिन (ए.ए.बी.) को तीन भागों में शामिल किया गया है, जैसे मौसम की स्थिति, फसलो की जानकारी एवं मौसम आधारित कृषि सलाह। पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय का कृषि मौसम परार्मश सर्विस कार्यक्रम कृषि मौसम के अनुसार प्रबंधन प्रदान करने के लक्ष्य के साथ एक अभिनव अंतर–विभागीय विस्तार सेवा हैं। पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के कृषि मौसम परार्मश सर्विस ने किसानों के बीच मौसम आधारित सलाह को अपनाने, उनकी समय पर उपलब्धता एवं सेवा की गुणवत्ता के बारे में पर्याप्त जागरूकता लाने में मदद की है। भारत मौसम विज्ञान विभाग ने (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों) के सहयोग से पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय भारत सरकार के तहत राष्ट्रीय मध्यम दूरी के मौसम पूर्वानुमान केंद्र एवं कृषि मौसम विज्ञान सलाहकार सेवाएं प्रदान कर रहा हैं। स्थान–विशेष व मध्यम–श्रेणी के मौसम पूर्वानुमान के आधार पर षक समुदाय को कृषि जलवायु क्षेत्र के पैमाने पर आधारित पूर्वानुमान जारी किये जाते हैं।

मौसम पूर्वानुमान के लाभ

- भविष्यवाणी कृषक समुदाय को आर्थिक लागत मूल्य में अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा।
- मौसम पूर्वानुमान के अनुरूप कृषि संचालन करने से ऊर्जा की

बचत होगी, उर्वरक, कीटनाशक आदि की प्रभावकारिता में वृद्धि होगी, खेती की लागत में बचत होगी एवं प्रतिकूल मौसम से फसल की बचत होगी।

- फसल की समग्र वृद्धि, विकास एवं उपज पर अनुकूल मौसम के प्रभाव का आकलन करने में सहयोग।
- सापेक्ष आर्द्रता, तापमान, हवा की गति एवं हवा की दिशा के पूर्वानुमान के माध्यम से कीट प्रबंधन, मौसम की जानकारी, विश्लेषण एवं कृषि कार्यो को करने के लिए निर्णय लेने मे लाभदायी हैं।
- वर्षा के पूर्वानुमान के माध्यम से जल प्रबंधन एवं अत्यधिक तापमान की स्थिति के पूर्वानुमान के माध्यम से थर्मल तनाव से फसल की सुरक्षा।

मौसम पूर्वानुमान की सीमाएं

इसमे अध्ययन को निष्पक्ष तरीके से डिजाइन एवं संचालित किया जाता हैं, लेकिन कुछ अप्रत्याशित अपरिहार्य पूर्वाग्रह सर्वेक्षण में कमियाँ रहने की संभावना होती हैं। मौसम आधारित कृषि परामर्श, सर्वेक्षण के दौरान एकत्र की गई आंशिक गलत जानकारीयो के बारे में जागरूकता के संबंध में कृषि मौसम परामर्श और गैर – कृषि मौसम परामर्श किसानों के बीच में परस्पर आपसी सामन्जस्य स्थापित करता हैं। किसान द्वारा अर्जित वास्तविक लाभों के बारे में पूरी तरह से जानकारी छिपाकर सरकार से धन प्राप्त करने के लिए मौसम के कारण हुए नुकसान के संबंध में काल्पनिक जानकारी। सर्वेक्षण के दौरान एकत्र किए गए आंकड़ों का विश्लेषण करते समय इस प्रकार की कमियों से बचने के लिए उचित सावधानी बरती गई, लेकिन उन सभी से बचना असंभव है, इसलिए इनमें से कुछ अंतिम परिणामों को प्रभावित करती हैं। किसान उचित प्रबंधन रणनीति अपनाकर खराब मौसम से होने वाले नुकसान को कम करके आय बढ़ा सकते हैं। कृषि मौसम परामर्श सर्विस (ए. ए. एस.) का मुख्य उद्देश्य कृषक समुदाय को उनकी खेती के संचालन में उपयुक्त प्रबंधन प्रथाओं जैसे कि बुवाई, किस्म का चयन, सिंचाई का उचित समय, उर्वरक आवेदन का समय, पौधों की सुरक्षा के उपाय आदि को पूर्वानुमानित मौसम के आधार अपनाने के लिए सलाह देना है।

कृषि मौसम परामर्श बुलेटिन (ए. ए. बी.) में किसी जिले की प्रमुख फसलों के साथ–साथ पशुधन के लिए संभावित जोखिम को कम करने के उपाय भी शामिल हैं। भारत मौसम विज्ञान विभाग (आई.एम. डी.) के कृषि मौसम परामर्श सर्विस के लाभ का विस्तार करने के लिए ग्रामीण कृषि मौसम सेवा (जी. के. एम. एस.) के तहत कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के सहयोग से देश भर में उपखण्ड स्तर पर एग्रोमेट सलाहकार सेवाएं प्रदान कर रहा है। उपखण्ड स्तर पर उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्रों वाले प्रत्येक चिन्हित जिलो में जिला कृषि मौसम इकाईयां (डी. ए. एम. यू.) स्थापित की जा रही हैं। जिला कृषि मौसम इकाई की स्थापना के मूल लक्ष्य में मौजूदा जिला स्तरीय कृषि मौसम परामर्श सेवा में सुधार के माध्यम से उपखण्ड स्तर या ग्राम स्तर के कृषक समुदाय को फसल एवं स्थान विशेष की कृषि मौसम परामर्श सेवा वितरित करना शामिल है। जिला कृषि मौसम इकाईयाँ कृषि सेवा की जरूरतों को पूरा करने एवं किसानों के लाभ के लिए पशुधन संबन्धित क्षेत्रों में विस्तार करने के लिए जिले के नोडल केंद्र के रूप में कार्य करेंगी।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

❋❋❋

सोयाबीन बीज का भण्डारण-समस्या एवं समाधान

आर. के. महावर, के.सी. मीना एवं राकेश कुमार बैरवा
कृषि महाविद्यालय, हिंडोली, बूंदी, कृषि विज्ञान केन्द्र अंता, बारां एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा (राजस्थान)

उत्तम बीज उन्नत कृषि का एक मूलभूत आधार है। सोयाबीन फसल भरत की प्रमुख तेल वाली फसल है। हमारे देश में सोयाबीन की खेती करने वाले किसानों के लिए सोयाबीन की गुणवत्तापूर्ण बीज की उपलब्धता सही समय पर न होना एक बड़ी समस्या हैं। प्रमाणित बीज के उत्पादन में देश प्रगति कर रहा है फिर भी बीज की मांग की तुलना में पूर्ति कम है। सोयाबीन का बीज भण्डारण के समय, अन्य फसलों की तुलना में जल्दी एंव ज्यादा खराब होती है। थोड़ी सी सावधानी रखकर कुछ जरूरी बातों को ध्यान में रखकर सोयाबीन बीज का भण्डारण करने पर अपने स्तर पर अपने बीज की गुणवक्ता, सही तरीके से भण्डारण कर के बनाये रख सकते हैं। सोयाबीन की बीज गुणवत्ता खराब होने कारण निम्न प्रकार हैं।

सोयाबीन की बीज गुणवत्ता खराब होने कारण

1. सोयाबीन फसल पकने के दौरान ही बीजों के गुणों में कमी आना शुरू हो जाती है, इसका कारण है कि जब फलियाँ सूखने लगती है उस वक्त बीज में नमी की मात्रा कम हो जाती है। जिस कारण रात में बीज ओस या हवा की नमी से पानी सोखता रहता है और दिन में धूप की गर्मी से सूखता है। यह प्रक्रिया हर रोज चलती रहती है। अगर पकी फसल दिनों तक खेत में खडी रहे या काटने के बाद खुले आसमान के नीचे छोड़ दिया जाये तो बीज गुणवत्ता बहुत प्रभावित होती है।

2. सोयाबीन बीज का आवरण काफी नाजुक होता है। मशीन से कटाई, गहाई और मढ़ाई के दौरान बीज के छिलके में चोट पहुंचती है फलस्वरूप बीज की अंकुरण कम हो जाती हैं।

3. सोयाबीन की बीज को जूट की बोरियों में भरकर सीधे सूखे जमीन पर लगातार कई महीने रखने से जमीन से निकली नमी बीज सोख लेता है जो हम नजर अंदाज कर देते है। कहीं–कहीं किसान गहाई के बाद बीज को पक्के जमीन पर ढ़ेर कर छोड़ देते हैं, यह सोचकर कि जमीन सुखी है लेकिन इस तरह से भी बीज जमीन से निकला भाप सोख लेता हैं और बीज खराब हो जाता हैं।

4. सोयाबीन बीज भण्डारण के समय बीजों के अंकुरण को प्रभावित करने में वातावरण की आद्रता एंव तापमान सबसे मुख्य कारण हैं। भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में गर्मी के बाद बरसात में सोयाबीन की बुवाई की जाती है। मार्च से जून तक हमारे देश में तापमान बहुत ज्यादा हो जाता है एंव 40 डिग्री से.ग्रेड से ज्यादा भी पार हो जाता है। इस वातावरण में बीज सही ढंग से रखाव न होने पर बीज का अंकुरण बहुत तेजी से घटता हैं।

5. भण्डारण के समय बीजों में फफूंद लगने से भी बीजों की अंकुरण क्षमता घट जाती है। भण्डारण के समय बीजों में नमी की मात्रा ज्यादा रहने या पानी लगने से बीजों में फफूंद लग जाता है। सोयाबीन बीज कटाई, मढ़ाई, प्रसंस्करण एंव भण्डारण के समय उचित देखभाल रखकर अच्छी गुणवत्ता वाली बीज अपने स्तर पर तैयार कर सोयाबीन की उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाकर स्वयं एंव देश की आर्थिक स्थिति सुधारने में अपनी भागीदारी कर सकते हैं।

सोयाबीन के बीज को भंडारण के दौरान सावधनियां

1. पकी हुई खड़ी फसल में बीज के गुणवक्ता के नुकसान को रोकने के लिए फसल को सही समय पर कटाई, गहाई एंव साफ करके सुरक्षित स्थानों पर भण्डारण करें। अन्य कार्य से कटाई को प्राथमिकता देना चाहिए।

2. बीज के लिए इस्तेमाल करने वाली सोयाबीन की फसल को पकी अवस्था में अगर कुछ पौधे पूरी तरह से ना भी सूखे हो तो उसे काट कर छाया में सुखा कर गहाई कर सकते हैं। यह बीज गुणवत्ता के हिसाब से सबसे उत्तम बीज होता है एंव इसकी भण्डारण क्षमता भी अच्छी होती है। बीज की उत्तम गुणवत्ता के लिए उपयुक्त नमी की मात्रा एवं तापमान निम्न प्रकार होना चाहिए।

बीज में नमी की मात्रा	**सुरक्षित तापमान**
18 प्रतिशत और ज्यादा	32.2 डिग्री से.
10–18 प्रतिशत	39.7 डिग्री से.
10 प्रतिशत या उससे कम	43.3 डिग्री से.

बीज में नमी ज्यादा हो तो उच्च तापमान में सुखाना नही चाहिए अन्यथा बीज भंपा जाता है। इससे बीज की अंकुरण क्षमता तेजी से घट जाती है। यदि बीज में नमी बहुत ज्यादा है तो बीज को धूप के बजाय छाया और हवादार जगह में सुखाना चाहिए।

3. कटाई एंव गहाई के बाद भी बीज में नमी बहुत ज्यादा होती है। नमी की उच्च मात्रा में विभिन्न सूक्ष्मजीवों के संक्रमण से बीज का गुणवत्ता खराब हो जाती हैं। गहाई के पश्चात बीज को धूप में

सुखाना बहुत ही जरूरी होता है। धूप में सुखाते वक्त बीज को पक्के फर्श पर न रखें। बीज को पतली तारपीन की परत के ऊपर सुखाना चाहिए। धूप में पक्कें फर्श ज्यादा गरम हो सकते है जो बीज के अंकुरण को कम कर देता है।

4. बीजों के भंडारण स्थल में हवा का अच्छी तरह से संचालन होना भी बहुत जरूरी है। अन्यथा गोदाम के अन्दर कहीं–कहीं जगह में गर्म स्थान बन जाता हैं जिससे भी बीजों की गुणवक्ता बहुत जल्दी कम हो जाती है।

5. भण्डार ग्रह में फर्श एवं दीवालों में दरार तथा बिल न हों। चूहों से बचा कर रखना चाहिए।

6. बीज उत्पादन वाली खेत मे फसल पकने के 15 दिन पहले फफूंदनाशक दवा जैसे कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। इससे पकी फसल में बारिश होने पर भी बीजों में फफूंद लगने का खतरा कम रहता है।

7. सोयाबीन की गहाई/मढ़ाई उचित थ्रेशर से करें। थ्रेशिंग ड्रम की स्पीड़ 450 आर.पी.एम. सबसे उत्तम है इससे अधिक गति पर सोयाबीन बीज क्षतिग्रस्त हो जाता है जिससे बीज के अंकुरण में कमी आ जाती है।

8. सोयाबीन फसल की कटाई–मढ़ाई के बाद सोयाबीन बीज के साथ कुडा–करकट, मिट्टी व कंकर आ जाती है अतः बीज की सही तरह से सफाई एंव ग्रेडिंग करनी चाहिए। कुड़े में उपस्थित मिट्टी वातावरण में उपस्थित नमी को अवशोषित करता है और इससे बीज ढ़ेर में फफूंद विकसित हो जाता है।

9. सोयाबीन के बीज को भंडारण करने से पहले ग्रेडिंग करने से एक समान आकार का बीज मिलता है। कच्चा, अधपका, क्षतिग्रस्त एवं संक्रमित बीज ग्रेडिंग करने से बीज ढ़ेर से निकल जाता है। एक समान आकार के बीज होने से अगली फ़सल में बीजों का अंकुरण एंव वृद्धि लगभग समान रूप से होता है।

10. सोयाबीन के बीज को जूट की बोरियों में भर कर लकड़ी या प्लास्टिक की पेलेट के ऊपर रखें। अन्यथा जमीन के संपर्क से बीज नमी सोंख लेता है। जिससे बीज की गुणवत्ता खराब हो जाती है ।

11. सोयाबीन का बीज चोट के प्रति अधिक कमजोर रहता है। जरा सी चोट लगने से भी सोयाबीन के बीज की अंकुरण क्षमता में कमी आ जाती हैं। इसलिए सोयाबीन बीज के प्रसंसकरन, परिवहन एंव भण्डारण करते समय बीज की बोरीयों को ज्यादा ऊंचाई से जमीन पर न गिराएं।

12. सोयाबीन भण्डार में बीज की बोरियों पेलेट के ऊपर 6 बोरियों से अधिक ऊंचाई न रखें। ज्यादा बोरियों रखने से नीचे की बोरी का बीज जल्द ही खराब होने की संभवना रहती है।

13. सोयाबीन के सुरक्षित भण्डारण के लिए तापमान 25 डिग्री से. एवं आद्रता भी 50 प्रतिशत उपयुक्त माने जाते है। इन दोनो मानकों में उतार चढाव होने से बीज के अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

14. गर्मी के मौसम में साधारणतया तापमान 40 डिग्री से. ग्रेड को पार कर जाता है। इस स्थिती में बीजों को ठंडी एवं शुष्क जगह में सुरक्षित रखना चाहिए। इसके लिए बीजों को प्लास्टिक ड्रम में भर कर अच्छे से बंद करके रख सकते हैं।

किसान कॉल सेन्टर
हेल्पलाईन 0744–2662700
कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र
(राष्ट्रीय कृषि विकास योजना)
प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

ड्रैगन फ्रूट की खेती की उन्नत तकनिकी

अनुज कुमार, देवी लाल किकरालियाँ एवं नरेन्द्र पादड़ा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

ड्रैगन फ्रूट का उद्भव अलंश्त लता से हुआ है जो की कैक्टेसी कुल से हुआ है ड्रैगन फ्रूट सजावटी चढ़ा वाली लताओं और कैक्टैसी प्रजातियों से आता है। इस फल का स्वाद नाजुक मीठा लेकिन कुरकुरे होता है, और यह हरे रंग की तराजू और गुलाबी रंग की त्वचा के साथ आकर्षक लगता है। इस फल का नाम ड्रैगन फ्रूट के नाम पर रखा गया था, क्योंकि यह ड्रैगन स्कैली के समान होता है। इस फल का आकार 6–12 सेमी और इसका आकार अंडाकार होता है। इसमें सफेद, लाल व गुलाबी रंग का गूदा होता है, जो खाने योग्य काले बीजों से भरा होता है। इसलिए, यदि आप वाणिज्यिक ड्रैगन फ्रूट की खेती करना चाहते हैं तो आप एकदम सही जगह पर हैं लेकिन यह भारत में बढ़ रहा है।

भारत में ड्रैगन फ्रूट की कीमत प्रति किलोग्राम 150 से 250 रुपये है। आप इस फल का उच्चतम उत्पादन देख सकते हैं जहां कम वर्षा की उम्मीद है। इसलिए, आप ड्रैगन फ्रूट के पौधे को एक सजावटी चढ़ा वाली बेल और फल पैदा करने वाले पौधे के रूप में मान सकते हैं। इसके अलावा, इस फल के उपयोग हैं ताजे फल के रूप में इसका सेवन करना या जैम, फलों का रस, आइसक्रीम, जेली, वाइन और फेस पैक बनाना। इस फल के विभिन्न प्रकार के नाम हैं–पीताया, पिठैया, रात की रानी, स्ट्रॉबेरी नाशपाती और दुनिया भर में कुलीन महिला।

ड्रैगन फ्रूट के महत्वपूर्ण बिंदू

इसका फल प्रोटीन, विटामिन, खनिजों, फाइबर, मैग्नीशियम, विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट का अच्छा स्रोत है। अस्थमा और गठिया को रोकने में मदद करता है। कोलेस्ट्रॉल कम करने व दिल के स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद करता है, उम्र बढ़ने से लड़ने में मदद करता है। प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करता है। जो की शरीर को संक्रमण से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए जलवायु आवश्यकताएँ

यह फल का पौधा खराब मिट्टी की स्थिति और तापमान भिन्नता में बढ़ता है। उष्णकटिबंधीय जलवायु की स्थिति ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए एकदम सही है। संरक्षित खेती के लिए आदर्श वार्षिक वर्षा 50 सेमी है। ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच होना चाहिए। ड्रैगन फ्रूट के पौधे ज्यादा धूप नहीं सहन कर सकते। इसलिए यदि आप इसे तेज धूप वाले क्षेत्र में उगाना चाहते हैं, तो बस छायांकन प्रदान करके इसे करें।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए उपयुक्त मृदा

इस फल को रेतीली दोमट से लेकर चिकनी दोमट मृदा तक विभिन्न प्रकार की मृदा में आसानी से उगा सकते हैं। इसकी खेती के लिए आदर्श रेतीली मृदा है, जिसमें अच्छे कार्बनिक पदार्थ और जल निकासी की सुविधा होनी चाहिए । ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए 5 से 7.5 का पीएच सबसे अच्छा होता है।

ड्रैगन फ्रूट पौधारोपण की विधि : ड्रैगन फ्रूट की मुख्य प्रजनन विधि कटिंग है। हालाँकि, पौधे बीज द्वारा भी तैयार कर सकते हैं। लेकिन बीज द्वारा अधिक समय और अपनी मातृ पौधों के समान गुणवाले पोधे प्राप्त नहीं होते। इसलिए, यदि आप ड्रैगन फ्रूट की खेती का पूरा लाभ चाहते हैं तो आपको गुणवत्ता वाले मातृ गुण के पौधे की कटिंग का उपयोग करना चाहिए। खेत में रोपण के लिए आपको 20 सेमी कलमों का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए पौधे से पौधे की दूरी 2 × 2 मीटर रखनी चाहिए। गड्ढों के आकार के लिए लम्बा , ऊचा , चौड़ा 60 × 60 × 60 सेमी खोदना होगा। इसके अलावा, इन गड्ढों सहित शीर्ष मिट्टी और खाद से भरना चाहिए।

ड्रैगन फ्रूट के पौधों की शाखाऐ

ड्रैगन फ्रूट की खेती से उचित लाभ व पौधों की उचित वृद्धि प्राप्त करने के लिए कंक्रीट या लकड़ी के स्तंभों का सहारा देना चाहिए। इन स्तम्भों से अपरिपक्व पौधों को बांधना है। ड्रैगन फ्रूट को बनाए रखने के लिए, आपको एक गोल/गोलाकार धातु के फ्रेम का उपयोग करना चाहिए।

खाद और उर्वरक

ड्रैगन फ्रूट के पौधे की अच्छी वृद्धि और विकास के लिए जैविक खाद महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 10 से 15 किलोग्राम जैविक खाद डालना चाहिए। उसके बाद खाद को प्रति वर्ष 2 किलो बढ़ाना चाहिए। जैविक के साथ इसकी अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिए अकार्बनिक उर्वरकों यूरिया, सुपरफॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश = 70:90:40 ग्राम/पौधा अनुपात मे डालना चाहिए तथा फल देने की अवस्था में आपको अधिक मात्रा में पोटाश और कम मात्रा में नाइट्रोजन भी देना होता है। यूरिया : सुपरफॉस्फेट : म्यूरेट ऑफ पोटाश = 50:50:100 ग्राम/ पौधे सहित फूल आने से पहले, फल आने के बाद और फल तुड़ाई के बाद दिया जा सकता है। यह ड्रैगन फ्रूट की गुणवता, उत्पादन व उत्पादकता को बढाता है।

सिचाई

अन्य पौधों की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती है जो की राजस्थान के जलाभाव वाले इलाकों के लिए उपयुक्त माना जा रहा है इसे रोपण, फूल और फल विकास के समय विपरीत जलवायु से बचाने के लिए सिंचाई करते है सिंचाई के प्रभावी उपयोग के लिए ड्रिप सिंचाई का उपयोग कर सकते हैं।

कीट और रोग

इसकी खेती में यह सबसे बड़ा लाभ है कि इसमें कोई कीट व रोग नहीं लगते हैं। इसके कारण पौधों को किसी प्रकार के रसायनों की आवश्यकता नहीं होती हैं, जिससे ड्रैगन फ्रूट की खेती मे कम लागत मे अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

फलो की तुड़ाई

अगस्त से दिसंबर महीने तक इसमें फल लगते हैं और फूल आने के एक महीने बाद फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके अलावा फूल आने का समय दिसंबर तक रहता है। इस अवधि में इन फलों की तुड़ाई 6 बार तक की जा सकती है। जब फल लाल/गुलाबी हो जाते हैं, तो यह फल तुड़ाई का सबसे अच्छा समय होता है। रंग बदलने के 3 से 4 दिनों के बाद फलो की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। निर्यात के लिए रंग बदलने के 1 दिन बाद आपको इनकी तुड़ाई करनी चाहिए।

❋❋❋

#IFFCONanoUrea

IFFCO

इफको नैनो यूरिया तरल

पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!

लागत कम करने में सहायक

किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि

मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए

फसल उपज को बढ़ाए

पौधों के पोषण में सहयोगी

पारंपरिक यूरिया से सस्ता

FOLLOW US:

IFFCO

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)

मो. 9413023482, 9887437524

अम्बिका मॉर्डन एग्रीकल्चर

KRISHI
SUMITOMO CHEMICAL
Remadey
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry

नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।

चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

_____

_____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन